उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

MAHY-106 (N) Part-I

आधुनिक विश्व (1870 ई० से 2000 ई०)

खण्ड–प्रथम : विश्व राजनीति एवं औद्योगिक समाज I 03–48

इकाई 1 – नवयुग का आरम्भ 5
इकाई 2 – नव जर्मन साम्राज्य (आस्ट्रिया के विशेष सन्दर्भ में) 11
इकाई 3 – फ्रांस का तृतीय गणतंत्र 23
इकाई 4 – नव इटली 35
इकाई 5 – रूसी साम्राज्य 43

खण्ड–द्वितीय : विश्व राजनीति एवं औद्योगिक समाज II 49–88

इकाई 1 – पूवी समस्या के संदर्भ मं बर्लिन व्यवस्था तथा उसके विश्वव्यापी परिणाम 51
इकाई 2 – अफ्रीका का बॅटवारा 63
इकाई 3 – यूरोप का औपनिवेशिक विस्तार 69
इकाई 4 – जर्मनी की विदेश नीति (1890 ई0– 1914 ई0) 75
इकाई 5 – प्रथम विश्व युद्ध 81

खण्ड – तृतीय : प्रथम विश्व युद्ध के बाद की राजनीति 89–146

इकाई 1 – पेरिस शान्ति सम्मेलन 91
इकाई 2 – राष्ट्र संघ का निर्माण 103
इकाई 3 – रूस की क्रान्ति तथा नवीन आर्थिक नीति 117
इकाई 4 – आधुनिक तुर्की का निर्माण 127
इकाई 5 – प्रथम विश्व युद्ध के बाद एशिया 137

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

MAHY-106 (N) Part-I

आधुनिक विश्व (1870 ई० से 2000 ई०)

खण्ड – 1

विश्व राजनीति एवं औद्योगिक समाज–I

इकाई – 1

नवयुग का आरम्भ

इकाई – 2

नव जर्मन साम्राज्य (आस्ट्रिया के विशेष सन्दर्भ में)

इकाई – 3

फ्रांस का तृतीय गणतंत्र

इकाई – 4

नव इटली

इकाई – 5

रूसी साम्राज्य

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज

MAHY-106 (N)

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह — मा0 कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार — कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार — निदेशक एवं आचार्य इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो. उमाशंकर गुप्ता — आचार्य, इतिहास, राजकीय महाविद्यालय, जक्खिनी, वाराणसी — प्रथम खंड (1–5 इकाई)

डॉ. अर्चना सिंह — सह आचार्य, इतिहास, काशी नरेश राजकीय महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोहीं — द्वितीय खंड (1–5 इकाई)

प्रो. अनुभा श्रीवास्तव — आचार्य, इतिहास, बीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी — तृतीय खंड (1–5 इकाई)

सम्पादक

प्रो0 पी0 एल0 विश्वकर्मा — पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज वर्ष–2023

ISBN :978-93-94487-89-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकडों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित–2024

मुद्रकः सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

इकाई–1 नवयुग का आरम्भ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 नवयुग का आरमम्भ

1.3 1870 ईव से यूरोप की राजनीति स्थिति

1.4 नवयुग की विशेषताएं

1.5 सारांश

1.6 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि–

- 1870 ईवव का वर्ष यूरोप के इतिहास में एक नवीन युग के प्रारम्भ का काल था।
- इस नवयुग का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ और इसका स्वरूप क्या था।
- 1870 ईव में यूरोप की राजनीतिक स्थिति कैसी थी।
- नवयुग की प्रमुख विशेषताएं क्या थी।

1.1 प्रस्तावना

यूरोप के इतिहास में 1870 ईव का वर्ष विशेष महत्व रखता है। यह वर्ष रोपीय इतिहास में 19वीं शताब्दी के राजनीतिक इतिहास का चरम बिन्दु माना जाता है। 1870 ईव में जर्मनी एवं इटली के एकीकरण के फलस्वरूप यूरोप के मानचित्र पर दो नवीन राष्ट्रों का उदय हुआ। फ्रांस की क्रान्ति के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर कई देशों में उदारवाद प्रजातन्त्र एवं उग्र राष्ट्रवादी विचारों का प्रचार प्रसार हुआ। अन्त में प्रगतिवादी विचारों ने प्रतिक्रियावादी विचारों पर विजय प्राप्त की।

1.2 नवयुग का आरम्भ

यूरोप के इतिहास में 1870–71 ईव का वर्ष एक पुरातन युग की समाप्ति और एक नवीन युग के आरम्भ का सूचक माना जाता है। इसी वर्ष जर्मनी और इटली का राष्ट्रीय एकीकरण सम्पन्न हुआ और आधुनिक यूरोप के निर्माण की प्रक्रिया समाप्ति के निकट पहुच गई। 1815 ईव में वियना काग्रेस द्वारा निर्धारित प्रतिबंद यूरोप में राष्ट्र वाद और उदारवाद के प्रसार को नही रोक सकें। इसके

बावजूद फ्रांस की क्रान्ति के सिद्धान्तो का प्रचार प्रसार सम्पूर्ण यूरोप में होता रहा! अन्त में प्रगतिवादी विचारों ने प्रतिक्रियावादी विचारो पर विजय प्राप्त की तथा अनेको निरंकुश शासकों की सत्ता का पतन हुआ। तत्पश्चात् 11815–1871 ईव तक यूरोप में अनेक नवीन राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण हुआ।

1870–71 ईव के पश्चात जिस नवीन युग का प्रारम्भ हुआ। उसमें यूरोप की राष्ट्रीयता का स्वरूप अधिक उग्र एवं विकृत हो गया। राष्ट्रवाद एवं सैन्यवाद ने धीरे धीरे सम्पूर्ण यूरोप को सशस्त्र शिविर में बदल गिया। साथ ही साथ आर्थिक राष्ट्रवाद एवं औद्योगिकरण ने एक नवीन साम्राज्यवाद की विचारधारा को जन्म दिया, जो पुराने साम्राज्यवाद से भिन्न था। आर्थिक शोषण ने श्रामिक आन्दोलन को जन्म दिया और समाजवादी आन्दोलन यूरोपीय राजनीतिक का एक महत्वपूर्ण तथ्य बन गया। इस नवयुग ने यूरोप के इतिहास में एक बड़ी सीमा तक पुरातन विचारो का न्त और नवीन विचारों के प्रारम्भ को जन्म दिया। इसी समय से यूरोपीय कूटनीति अन्तराष्ट्रीय कूटनीति में परिवर्तित होने लगा। इसके फलस्वरूप यूरोप की राजनीति में जटिलता आने लगी।

1.3 1870 ई0 में यूरोप की राजनीतिक स्थिति

1870 ईव में यूरोप के राजनीतिक पटल पर विभिन्न देशो की स्थिति एवं प्रभाव निम्नवत् थी–

1. **फ्रांस** – सन् 1870 ईव में फ्रांस में राजतंत्र के अन्त के बाद एक बार पुनः गणतन्त्र की स्थापना हुई। 2 सितम्बर को नेपोलियन की की जर्मनी के हाथों पराजय हुई और 4 सितम्बर को पेरिसवासियों ने फ्रांस के तृतीय गणतन्त्र की घोषणा कर दी और एक अस्थायी गणतन्त्र सरकार का गठन किया। नई सरकार ने प्रशा के विरूद्ध युद्ध जारी रखा, प्रशा की सेनाएं विजय प्राप्त करते हुए पेरिस की ओर बढ़ती गई। अंततः 28 जनवरी 1871 को पेरिस का पतन हो गया और 10 मई 1871 ईव को प्रशा और फ्रांस के बीच फ्रेंकफर्ट की संधि हो गई और युद्ध का अन्त हो गया। ग्रान्ट एवं टैम्परले का कथन है कि '1870 के वर्ष में फ्रांस ने जिस गणतन्त्र को जन्म दिया, वह 1940 की उथल पुथल द्वारा उसके नष्ट किए जाने तक जीवित रहा।

2. **जर्मनी** – फ्रांस–प्रशा युद्ध (1870–71) के फलस्वरूप जर्मनी के एकीकरण का कार्य सम्पन्न हुआ। बिस्मार्क ने अपनी नेतृत्व क्षमता का प्रदर्शन कर यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्र का जन्म युद्ध भूमि में होता है। 18 जनवरी 1871 ईव को वार्साय के राजमहल में प्रशा के राजा कैंसर विलियम को जर्मन सम्राट घोषित किया गया और बिस्मार्क जर्मनी का प्रथल चांसलर नियुक्त हुआ। इस समय संयुक्त जर्मनी यूरोप का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। और बिस्मार्क यूरोप का सबसे प्रभावशाली राजनीतिज्ञ माना जाने लगा। उसने अगले 20 वर्षो तक यूरोपीय कूटनीति में एक 'अतुलनीय नायक' की भूमिका अदा की।

3. **इटली** – फ्रांस और प्रशा के युद्ध ने इटली के एकीकरण के कार्य को भी पूरा किया। फ्रांस–प्रशा युद्ध का लाभ उठाकर सम्राट विक्टर इमैनुअल ने 20 सितम्बर 1870 ईव को रोम पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। जनमत सग्रह के पश्चात् रोम को इटली में मिला लिया गया और उसे संयुक्त इटली की

राजधानी बनाया गया। 2 जून 1817 ईव को विक्टर इमैनुअल ने रोम में प्रवेश करते समय घोषणा की "हम रोम आ पहुँचे है और यहीं रहेंगे।"" इटली की नवीन स्थिति ऐसी थी कि यूरोप के राज्य उसे महत्व देने लगे। 1815 ईव के वियना कांफ्रेंस में जिसे 'भौगोलिक शब्द मात्र' कहा गया था, वह एक स्वतन्त्र देश बन गया।

4. इग्लैण्ड – 1868 ईव0 में इंग्लैण्ड में आम चुनाव हुआ और उदारवादी दल का नेता एबार्ट ग्लैडस्टन प्रधानमंत्री बना। उसका प्रथम शासनकाल, जो 1868 से 1874 ई0 तक रहा, महान सफलता का समय था। उसने आन्तरिक क्षेत्र में अनेक सुधार किए। विदेश नीति के क्षेत्र में 'शानदार पृथकता की नीति' का पालन करते हुए इंग्लैण्ड ने किसी बड़े युद्ध में भाग नहीं लिया। धीरे–धीरे इंग्लैण्ड औपनिवेशिक साम्राज्य विस्तार क्षेत्र में सबसे आगे हो गया। इसका सबसे बड़ा कारण यही था कि 19वीं सदी में आन्तरिक शान्ति रही, जबकि अन्य देश किसी न किसी युद्ध में फँसे रहे। 1850 से 1870 ई0 के बीच इंग्लैण्ड में भारी औद्योगिक प्रगति हुई। यही कारण है कि इस काल को ब्रिटिश उद्योगों का स्वर्णकाल भी कहा जाता है।

5. रूस – सन् 1870 ई0 में रूस का सम्राट एलेक्जेण्डर II था। उसने अपने शासन काल के प्रथम चरण (1855–65 ई0) में सुधारवादी नीति अपनायी और न्याय व स्थानीय स्वशासन सम्बन्धी सुधार लागू किए। किन्तु शासनकाल के द्वितीय चरण (1865 – 81 ई0) में उसने प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण किया और जनता के अधिकारों का दमन करता रहा। इसके फलस्वरूप रूस में शून्यवाद (Nihilism) आन्दोलन का जन्म हुआ। ये शून्यवादी रूस के बौद्धिक वर्ग के अतिव्यक्तिवादी लोग थे, जो प्रत्येक मानवीय संस्था एवं रीति को तर्क की कसौटी पर सकते थे। केवल कुछ रूसी संस्थाए ही इस कसौटी पर कसी जा सकती थी। अतः शून्यवादियों ने राजतन्त्र शासन का खण्डन किया। 1870 ई0 के बाद यह आन्दोलन हिंसात्मक रूप धारण करने लगा और आन्दोलनकारियों ने हिंसा का सहारा लेकर 1881 ई0 में जार एलेक्जेण्डर II की हत्या कर दी। 1870 ई0 में रूसी प्रयासों के फलस्वरूप तुर्की के सुल्तान ने बुल्गेरिया ने चर्च को पृथक धर्माध्यक्ष (Exarch) नियुक्त कर दिया। इसके पूर्व यह चर्च कुस्तुनतुनिया के ग्रीक पैट्राक के अधीन था। तुर्की के सम्बन्ध में इस समय रूसी नीति 2 उद्देश्यों से प्रेरित थी – प्रथम तुर्की साम्राज्य में रहने वाले स्लाव जाति के ईसाइयों की रक्षा, द्वितीय काले सागर में रूस के प्रभाव की पुनर्स्थापना।

6. आस्ट्रिया – मेटरनिख के पतने के पश्चात सम्राट फ्रांसिस जोसेफ (1848–1916 ई0) ने आस्ट्रिया–हंगरी का शासन संभाला। यद्यपि 1867 ई0 के राजनीतिक समझौते के आधार पर आस्ट्रिया एवं हंगरी 2 भागों में विभाजित हो गए, दोनों की अलग–अलग संसदे एवं संविधान बने। लेकिन दोनों ने फ्रांसिस जोसेफ को अपना राजा माना और सैनिक व विदेशी मामलों को देखने के लिए संयुक्त मंत्रीमण्डल नियुक्त किया गया। आस्ट्रिया और हंगरी के इस द्वैध राजतंत्र के सम्राट फ्रांसिस जोसेफ को आस्ट्रिया का सम्राट और हंगरी का राजा की दोहरी उपाधि में विभूषित किया गया। विदेशमंत्री एन्द्रासी ने आस्ट्रिया को यूरोपीय राजनीति में पुनः महत्वपूर्ण स्थान दिलाया।

इसी काल में आस्ट्रिया ने बाल्कान क्षेत्र में प्रभाव बढ़ाने शुरू किया। 1878 ई0 के बर्लिन कांग्रेस के निर्णयानुसार आस्ट्रिया को बोस्निया हर्जेगोविना पर शासन करने का अधिकार मिल गया। किन्तु जब 1908 ई0 में आस्ट्रिया ने इन दोनों प्रदेशों पर पूर्ण अधिकार कर लिया, तब रूस और सर्विया से उसकी शत्रुता बढ़ गई, जो आगे चलकर प्रथम महायुद्ध का कारण बना।

1870 से 1914 ई0 के पूर्व तक अमेरिका और जापान नामक दो गैर यूरोपीय देशों के शक्तिशाली बनने का भी यूरोप की राजनीति पर न्यूनाथिक प्रभाव पड़ा। 19वीं सदी में पश्चिम में अमेरिका ने और सुदूर पूर्व में जापान ने तीव्रगति से विकास किया।

1.4 नवयुग की विशेषताएं

यूरोप जगत में जिस नवीनयुग का आरम्भ 1871 ई0 में हुआ। उस नवीनयुग ने कुछ अभिनव विशिष्टताओं को प्रस्तुत किया औरौ कुछ प्राचीन विशेषताओं को नवीन स्वरूप दिया दृ

1. **उग्र राष्ट्रवाद** – 1871 ई0 के पश्चात यूरोप में राष्ट्रीयता का स्वरूप उग्र और विकृत हो गया। जर्मनी ने आस्ट्रेलिया और फ्रांस पर विजय प्राप्त कर यूरोपीय राजनीति में अग्रणी स्थान प्राप्त कर लिया। इन विजेयों से जर्मन राष्ट्र का गौरव में वृद्धि हुई। अब जर्मन जाति के लोग अपनी सभ्यता, संस्कृति, भाषा एवं नस्ल को यूरोप भर मैं श्रेष्ठ समझने लगे। वे अन्य यूरोपीय जातियों को घृणा एवं अवहेलना की दृटि से दिखने लगे। जर्मन उग्र राष्ट्रवाद का प्रभाव यूरोप के अन्य देशो पर भी पड़ा। शनै शनै यूरोप के अन्य शक्तिशाली देश संसार में अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए प्रयासरत होने लगे। निःसन्देह आर्थिक एवं औद्योगिक विकास साम्राज्य एवं सैनिक नीतियों ने यूरोप के देशो को एक दूसरे का विरोधी बना दिया। वे अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए एक दूसरे के विरूद्ध सघर्ष करने हेतु तत्पर हुए। जर्मनी एवं इटली के एकीकरण से प्रेरणा पाकर आयरलैण्ड, पोलैण्ड एवं बाल्कान देशो में स्वंतत्रता आन्दोलन तीव्र हो गया। बाल्कान प्रायद्वीप में इस समस्यां ने भीषण रूप धारण कर लिया। औरौ अन्ततः में यह प्रथम महायुद्ध के विस्फोट का एक प्रमुख कारण बना।

2. **सैनिकवाद** – उग्र राष्ट्रवाद के फलस्वरूप यूरोप में सैनिकवाद का उदय हुआ। 1870 ई0 के बाद विभिन्न राष्ट्रो के हथियार बन्दी की होड शुरू हो गई। इसीलिए यूरोप के इतिहास में 1870–1914 ई0 के युग को अन्तराष्ट्रीय अराजता का युग भी कहा जाता है। इस काल में यूरोप के सभी देशो में सेना को आधुनिक हथियारों से सुसज्जित करने की होड शुरू हो गई तथा सम्पूर्ण यूरोप एक सशक्त शिविर (Armed Camp) बन गया।

3. **गुटबंदिया** – जर्मनी के चांसलर बिस्मार्क ने फ्रांस की मित्रहीन एवं शक्तिहीन बनाए रखने के लिए गुटबन्दी की राजनीति का सहारा लिया। इस नीति ने यूरोप की राजनीति पर गहरा प्रभाव डाला। बिस्मार्क के प्रयासो से जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली के बीच त्रिगुट संन्धि का निर्माण हुआ। दूसरी ओर इस गुट के विरूद्ध फ्रास ने त्रिगुट सन्धि स्थापना की। इसी प्रकार कुछ और भी गुप्त सन्धियों की गई। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण यूरोप 2 गुटों में बॅट गया। अतः इसी गुटबंन्दी ने प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की।

4. **उद्योगवाद** – इस नवीनयुग का एक प्रधान लक्षण उद्योगवाद था। 1871–1914 ई0 के मध्य यूरोप में औद्योगिकरण का दौर शुरू हुआ। इसक फलस्वरूप यूरोप का कायाकल्प हो गया। विज्ञान के क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक प्रगति हुई। विज्ञानवाद और उद्योगवाद ने आर्थिक राष्ट्रीयता को जन्म दिया। राष्ट्रीय उद्योगधन्धों की उन्नति के लिए सरक्षंक नीति का अनुसरण किया जाने

लगा। धीरे धीरे यूरोपयी शक्तियों के बीच यूरोप के बाहर अन्य देशों में उपनिवेश की स्थापना करने और नवीन बाजार खोजन की होड़ शुरू हो गई।

5. नवीन साम्राज्यवाद – उद्योगवाद और आर्थिक राष्ट्रवाद ने नवीन साम्राज्यवाद को जन्म दिया, जो पूर्ववर्ती साम्राज्यवाद से भिन्न था। पुराना साम्राज्यवाद लगभग 15वी सदी से चला आ रहा था। वह व्यापारिक पद्धति पर आधारित था, इसका मुख्य उद्देश्य व्यापारिक लाभ था। किन्तु 1775 ई0 में अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम के प्रारम्भ होने से पुराने साम्राज्यवाद को गहरा आघात लगा और नवीन साम्राज्यवाद का उदय हुआ। इसकी मुख्य विशेषता यह थी कि आर्थिक शोषण के साथ साथ राजनीतिक शोषण पर भी बल दिया जाने लगा। 1870 ई0 के बाद प्रमुख समस्या उत्पादित माल बेचने और पूंजी निवेश करने योग्य देशो की खोज था। अतः यूरोपीय देश ऐसे प्रदेशो की खोज हेतु तत्पर हुए। धीरे–धीरे नवीन साम्राज्य की स्थापना के लिए साम्राज्यवादी देशो के बीच सर्घष शुरू हो गया।

6. विश्व राजनीति का यूरोपीयकरण – नवीन युग में विश्व राजनीतित का यूरोपीयकरण हुआ। नवीनन साम्राज्यवाद के विस्तार के फलस्वरूप अब यूरोपीय देशों के झगड़ें अधिकाशंतः यूरोप के बाहर के मामलों पर होने लगे। गैरयूरोपीय देशो में घटने वाली राजनीतिक घटनाएं अधिकाश यूरोपीय राज्यों की राजनीति का परिणाम ही होती थी। इस प्रकार यूरोप की समस्या विश्व की समस्या बन गई।

राजनीतिक प्रभाव के अतिरिक्त गैरयूरोपीय देशों पर यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव बढ़ने लगा। यूरोप के सम्पर्क से एशिया और अफ्रीका में नवीन प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। आगे चलकर राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्र, समाजवाद, आदि सिद्धान्तो का गहरा प्रभाव उपनिवेशो पर पड़ा और उपनिवेश अपने न्यायसंगत अधिकारों की प्राप्ति के लिए सचेष्ट हो गए।

7. अन्तराष्ट्रीयता – इस युग की एक अन्य विशेषता अन्तराष्ट्रीयता थी। यातायात एवं संचार साधनों के विकास के कारण अन्तराष्ट्रीयता का काफी प्रचार प्रसार हुआ। दूरस्थ देशो के निवासी यूरोप के निकट सम्पर्क में आ गए। फलस्वरूप विभिन्न देशों के बची अन्तराष्ट्रीय सहयोग की भावना बढ़ने लगी। वस्तुतः यह एक विचित्र बात थी कि नवीन युग में एक ओर तो अन्तराष्ट्रीय विद्वेष से सम्पूर्ण विश्व का वातावरण अशान्त हो रहा था, वही दूसरी ओर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अन्तराष्ट्रीय सहयोग बढ़ रहा था। 1870 ईव के पश्चात अनेक ऐसी अन्तराष्ट्रीय संस्थाएं स्थापित हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य मनुष्य के अन्तराष्ट्रीय जीवन का संचालन करना था। इनसे संस्थानों का उत्थान अन्तराष्ट्रीयता के क्षेत्र में शुभ लक्षण का प्रतीक था।

8. शान्तिवाद – नवीन युग में अन्तराष्ट्रीयता के साथ–साथ शान्तिवाद का विकास हुआ। विश्व शान्ति की स्थापना और आपसी विवादो के समाधान के लिए राष्ट्रो ने प्रयास शुरू किया। अनेको विवादों का हल पारस्परिक संन्धियों एवं अन्तराष्ट्रीय सम्मेलनों द्वारा निकाला गया। 1899 ईव में स्विट्जरलैण्ड के बर्म नगर में अन्तराष्ट्रीय शांतिवाद का प्रधान कार्यालय स्थापित किया गया और उसके वार्षिक सम्मेलन होने लगे। इस युग में विश्वशान्ति की स्थापना के लिए स्वीडेन के एक धनी व्यक्ति अल्फ्रेड नोबल के शान्ति के लिए नोबल पुरस्कार देने की परम्परा शुरू की। हेग नगर में 'शान्ति के मन्दिर' की स्थापना की गई। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होने लगे। विश्वशान्ति एवं हथियारों की होड़ समाप्त करने के लिए हेग में 1899 एवं 1907 ईव में अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजिक किए गए।

9. **मजदूर आन्दोलन और समाजवाद** – नवीन युग में औद्योगिक कान्ति के फलस्वरूप श्रमिक आन्दोलन शुरू हुए। श्रम सुधार एवं मजदूरो को अच्छा वेतन दिलाने के लिए ट्रेड यूनियन आन्दोलन का प्रचार हुआ। आन्दोलन की तीव्रता को देखकर अनेक देशो की सरकारों ने श्रमिको की दशा सुधारने के लिए कदम उठाए।

श्रमिक सुधारको का मानना था कि वर्तमान राज्य सरकारो पर पूंजीपतियो का प्रभुत्व है और उनसे यह आशा करना व्यर्थ है कि वे श्रमिको को उचित अधिकार देगे। श्रमिको का भला तभी हो सकता है, जब पूंजीवाद का अन्त हो जाए, और समाज का नवनिर्माण नवीन आधार पर हो। इस नवीन समाज में आर्थिक समानता हो उत्पादन के साधनों एवं लाभ पर समाज का स्वामित्व हो। यह नवीन विचारधारा 'समाजवाद' के नाम से जानी जाती है। समाजवाद को वैज्ञानिक स्वरूप देने का श्रेय कार्ल मार्कस को प्राप्त है। 1871 ईव के पश्चात मार्क्सवादी आन्दोलन यूरोप की राजनीति का एक महत्वपूर्ण तथ्य बन गया था।

1.5 सारांश

हम देखते है कि उग्र राष्ट्रवाद, सैनिकवाद, साम्राज्यवाद, अन्तराष्ट्रीयवाद, शान्तिवाद, श्रमिक आन्दोलन एवं समाजवाद नवीनयुग के प्रधान लक्षण थे। इनके प्रभाव के पश्चात यूरोपीय राजनीति में अत्यधिक जटिलता आ गई। इन ऐततिहासिक लक्षणों की उत्पत्ति प्रधानतः जर्मनी से हुई अतः जर्मनी इस युग में यूरोपीय राजनीति का प्रमुख केन्द्र बन गया। इस युग में घटित महत्वपूर्ण घटनाओं का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध जर्मनी से अवश्य रहा था। 1870–1890 ईव तक जर्मनी में बिस्मार्क का प्रभाव था और उसने यूरोप की राजनीति काफी प्रभाव डाला। यूरोपप की राजनीति में बिस्मार्क की वही स्थिति थी, जो कभी नेपालियन और मेटरनिख की थी। इसलिये 20 वर्षो की इस अवधि को बिस्मार्क युग भी कहा जाता है। यद्यपि विस्मार्क के पश्चात जर्मन साम्राज्य की बागडोर कैसर विलियम द्वितीय के निर्बल के हाथों में चला गया किन्तु जर्मनी का अब भी पहले की भांति प्राधान्य बना रहा है। वास्तव में विश्वयुद्ध के पूर्व और उसके पश्चात की यूरोप की कूटनीति मुख्यतः जर्मन समस्या से ही सम्बन्धित रही।

1.6 बोधप्रश्न

- 1870 का वर्ष यूरोप के कूटनीतिक इतिहास में एक नया मोड़ था' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
- 1870 ईव में यूरोप की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
- नवयुग की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

****

इकाई–2 नव जर्मन साम्राज्य (अस्ट्रिया के विशेष सन्दर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 नव जर्मन राम्राज्य एवं बिस्मार्क की आन्तरिक नीति

2.4 नवीन संविधान का निर्माण

2.5 सांस्कतिक संघर्ष

2.6 समाजवादियों से संघर्ष

2.7 विस्मार्क की विदेश नीति एवं आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध

2.8 सारांश

2.9 बोध प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप जान सकेंगे कि 19वीं शताब्दी में नवजर्म साम्राज्य की यूरोपीय नीति कैसी थी।

- ❖ जर्मनी के चांसलर बिस्मार्क ने देश की एकता के लिए गृहनीति के अन्तर्गत कौन–कौन से कार्य किए।
- ❖ बिस्मार्क ने चर्च और समाजवादियों की बढ़ती शक्ति को रोकने के लिए क्या कदम उठाए।
- ❖ विदेश नीति के क्षेत्र में बिस्मार्क ने जर्मनी और आस्ट्रिया के बीच मधुर सम्बन्ध बनाने पर अधिक बल क्यों दिया?

2.2 प्रस्तावना

सन् 1871 ईव से जर्मनी में एक नवीन युग का प्रारम्भ हुआ। सेडान के युद्ध में फ्रांस की पराजय एवं नेपोलियन प्प् के आत्म समर्पण के साथ ही जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हो गया। जर्मनी के एकीकरण में प्रशा के चांसलर बिस्मार्क ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने अपनी कूटनीतिक योग्यता, राजनीतिक कुशलता एवं रक्त व लौह की नीति के बल पर मात्र आठ वर्ष की अवधि में संयुक्त जर्मन राष्ट्र के स्वप्न को साकार कर दिया। जर्मनी के एकीकरण के पश्चात् प्रशा का सम्राट विलियम प्रथम जर्मन साम्राज्य का सम्राट बनाया गया तथा बिस्मार्क जर्मनी का प्रथम चांसलर नियुक्त हुआ। वह इस पद पर 20 वर्ष (1871–90 ईव) तक कार्यरत रहा। इस अवधि में नवजर्मन साम्राज्य के चांसलर बिस्मार्क ने आंतरिक एवं

विदेश नीति के क्षेत्र में अद्वितीय उपलब्धियाँ प्राप्त की। यही कारण है इस अवधि को 'बिस्मार्क के युग' के नाम से जाना जाता है।

2.3 नवजर्मन साम्राज्य एवं बिस्मार्क की आन्तरिक नीति

नवजर्मन साम्राज्य का निर्माण विभिन्न प्रान्तों को मिलाकर किया गया था। जिसमें कानून व्यवस्था, शासन व्यवस्था, यातायात, बैंकिंग एवं वाणिज्य आदि के सम्बन्ध में विभिन्नताएं थी। इन विषमताओं को दूर किए बिना देश में राष्ट्रीय एकता स्थापित करना असम्भव था। इन समस्याओं के समाधान के लिए विस्मार्क ने कई महत्वपूर्ण कार्य किए। उसने सम्पूर्ण साम्राज्य में एक समान शासन व्यवस्था एवं कानून व्यवस्था की स्थापना की तथा सैनिक दृष्टि से जर्मनी को शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी। बैंकिग व्यवस्था में सुधार किए और मार्क को राष्ट्रीय मुद्रा घोषित किया। उसने रेलवे, डाक, तार, सड़क, व्यापार आदि क्षेत्रों में पर्याप्त कार्य किया।

2.4 नवीन संविधान का निर्माण

बिस्मार्क ने देश के प्रशासन के सुचारू संचालन के लिए एक नवीन संविधान का निर्माण कराया, जो 16 अप्रैल 1871 ईव को लागू हुआ। इस संविधान में सम्राट, चांसलर, व्यवस्थापिका सभा एवं न्यायपालिका के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण व्यवस्थाएं की गई थी।

जर्मनी के संविधान में जर्मन सम्राट को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। वह जर्मन संघ का अध्यक्ष था। सम्राट के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में संविधान मौन था। चूंकि प्रशा के राजा को जर्मन सम्राट बनाया गया। अतः अनुमान लगाया गया कि प्रशसा की परम्परा के अनुसार ही राजा उत्तराधिकारी होगा। सम्राट सेना का मुख्य प्रधान था। विदेशी मामलों का निर्णय करना, युद्ध आरम्भ करने की घोषणा करना, संसद का अधिवेशन बुलाना, मंत्रीमण्डल के सदस्यों की नियुक्ति तथा पदच्युति करना आदि अधिकार सम्राट को प्रदान किये गये।

जर्मनी के प्रधानमंत्री को चांसलर कहा गया, जिसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी। वह संसद के प्रति उत्तरदायी न होकर जर्मन सम्राट के प्रति ही उत्तरदायी था और सम्राट की इच्छानुसार ही अपनी शक्तियों का उपभोग करता था। संविधान के अन्तर्गत चांसलर को असीमित अधिकार प्राप्त थी। वह उच्च सदन का अध्यक्ष होता था एवं दोनों सदनों की बैठकों में भाग ले सकता था।। उसे सभी उच्च प्रशासनिक नियुक्तियाँ करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

संविधान के अन्तर्गत एक द्विसदनात्मक संसद की व्यवस्था की गई थी। उच्च सदन को साम्राज्य परिषद (Bundesrat) तथा निम्न सदन को लोकसभा (Reichstag) कहा गया। साम्राज्य परिषद की सदस्य संख्या 98 ती। जिन्हें संघ में शामिल राज्यों की सरकारे चुनती थी। प्रशा प्रान्त के प्रतिनिधियों की संख्या सबसे अधिक 17 थी। संविधान में यह व्यवस्था की गयी कि यदि उच्च सदन के 14 सदस्य किसी प्रस्ताव का विरोध करें, तो वह प्रस्ताव पारित नहीं होगा। इस दृष्टि से प्रशा की स्थिति काफी सुदृढ़ थी, क्योंकि उसके सर्वाजनिक 17 मत थे। प्रशा की सहमति के बिना संविधान में कोई संशोधन नहीं हो सकता था। उच्च सदन का मुख्य कार्य–संघ के बजट को निश्चित करना, चुंगी एकत्र करना, न्याय पालिका, विदेश सेवा, सेना, एवं प्रशासनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति के मामलों में

सम्राट को परामर्श देना था। उच्च सदन ही अपील का अन्तिम न्यायालय था।

निम्न सदन या लोकसभा के सदस्यों की कुल संख्या 397 थी। यह जनता का प्रतिनिधि सदन था, जिसका निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर 3 वर्ष के लिए होता था। सदस्यों का विभाजन राज्यों की जनसंख्या के आधार पर किया गया था। इस सदन में भी प्रशा के प्रतिनिधियों का सर्वाजनिक प्रभाव था। प्रत्येक विधेयक निम्न सदन में ही प्रस्तुत किये जाते थे, किन्तु उसे कानूनी रूप देने का अन्तिम सीमित थे। जनता की प्रतिनिधि सभा होते हुए भी उसकी शक्तियाँ नगण्य थी। उच्च सदन की सम्मति से सम्राट निम्न सदन को भंग कर सकता था।

जर्मन साम्राज्य की प्रधान न्यायपालिका के रूप में एक संघीय सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था संविधान में की गई थी। देशद्रोह के मुकदमें तथा राज्यों की अपीलों की अन्तिम सुनवाई भी सर्वोच्च न्यायालय में ही होती थी। किन्तु इस न्यायालय को कानूनों की व्यवस्था करने का अधिकार न था, अतः उसे यथार्थ रूप में संघीय न्यायालय नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार जर्मनी के नवीन संविधान में केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने तथा प्रशा को सर्वाधिक सुदृढ़ स्थिति प्रदान करने का प्रयास किया गया। वास्तव में शासन की सम्पूर्ण शक्ति सम्राट व चांसलर के हाथों में निहित थी।

विभिन्न सुधार कार्य – सम्पूर्ण साम्राज्य में एकरूपता स्थापित किए बिना जर्मन साम्राज्य की सुदृढ़ता एक कठिन समस्या थी। अतः बिस्मार्क ने इस दिशा में निम्नलिखित कदम उठाए–

1. सम्पूर्ण साम्राज्य में राष्ट्रीय कानून बनाए गए और राष्ट्रीय न्यायालयों की स्थापना की गई।
2. राज्यों की पृथक–पृथक मुद्राओं के स्थान पर एक राष्ट्रीय मुद्रा मार्क का प्रचलन किया गया।
3. 1870 ई0 में एक इम्पीरियल बैंक की स्थापना की गई और देशभर के सभी बैंकों को उससे सम्बद्ध किया गया। सम्पूर्ण साम्राज्य के लिए समान बैंकिग नियम लागू किए गए।
4. एक इम्पीरियल रेलवे बोर्ड का गठन किया गया और समस्त राज्यों की रेलों पर केन्द्रीय अधिकार स्थापित किया गया। डाकतार विभाग की देखरेख के लिए पृथक विभाग का गठन किया गया। इन सुधारों को लागू करके विस्मार्क ने केन्द्रीय सरकार की शक्ति बढ़ाकर साम्राज्य के सभी राज्यों को एक शासन व्यवस्था के अधीन लाने का प्रयास किया।

2.5 सांस्कृतिक संघर्ष या कुल्वुर कैम्प

1671 से 1878 ई0 के बीच बिस्मार्क का जर्मनी के रोमन कैथोलिक चर्च के साथ जो संघर्ष हुआ, उसे कुल्वुर कैम्प अथवा सांस्कृतिक संघर्ष की संज्ञा दी जाती है। जर्मनी का कैथोलिक चर्च अपनी धार्मिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता हर कीमत पर बनाये रखना चाहता था। बिस्मार्क चर्च की इस नीति के विरूद्ध था, क्योंकि जर्मनी के एकीकरण अभियान में बिस्मार्क के प्रयासों का कैथोलिक चर्च ने कड़ा विरोध किया था।

जर्मनी की रोमन कैथोलिक जनता एवं विस्मार्क की राजनीतिक विचारधारा एक दूसरे के विपरीत थी। पोप चर्च की शक्ति को राज्य में सर्वोच्च मानता था, इसके विपरीत बिस्मार्क चर्च की स्थिति धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित रखना चाहता था। क्योंकि वह राज्य को सर्वोपरि मानता था। जर्मनी में रोमन कैथोलिकों ने विस्मार्क की नीतियों एवं कार्यों का विरोध करने के लिए केन्द्रीय दल (ब्मदजमत च्ंतजल) नामक संगठन बना लिया था। दोनों पक्षों के बीच संघर्ष का तात्कालिक कारण 1870 ई0 में पोप की वह घोषणा थी, जिसमें पोप की अमोघता या त्रुटिहीनता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया था। इसमें कहा गया कि "धार्मिक क्षेत्र में पोप सर्वोच्च व्यक्ति है, जिसके वचन दोष रहित है और राज्य के नियन्त्रण से मुक्त है।"

पोप की इस आज्ञा को स्वीकार करने के सम्बन्ध में रोमन कैथोलिकों में मतभेद उत्पन्न हो गया। स्वयं अनेक जर्मन पादरियों ने इसका विरोध किया। म्यूनिरव विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एवं धर्मशास्त्री डालिन्जर और उनके समर्थकों ने पोप की अमोघता के सिद्धान्त को मानने से इन्क्र कर दिया। फलस्वरूप कैथोलिकों में परस्पर संघर्ष शुरू हो गया। पोप ने सभी विरोधी पादरियों को धर्म से निष्कासित कर दिया। अतः इन लोगों ने बिस्मार्क से सुरक्षा की मांग की। बिस्मार्क की दृष्टि में पोप की कार्यवाहियाँ सरकार को चुनौती थी। अतः उसने कैथोलिक चर्च की शक्तियों पर नियन्त्रण के उद्देश्य से शिक्षामंत्री फाक के परामर्श से 'मई कानून' बनाए और निम्नलिखित कदम उठाए –

1. सर्वप्रथम जर्मन संसद द्वारा कैथोलिक पादरियों के शिक्षा सम्बन्धी अधिकार समाप्त कर दिए गए। इस प्रकार देश की शिक्षण संस्थाओं से चर्च का नियन्त्रण समाप्त हो गया।

2. 1872 ई में एक कानून द्वारा जेसुइटो को जर्मनी से निष्कासित कर दिया गया तथा पादरियों द्वारा धर्म मंच (च्नसचपज) से राज्य सम्बन्धी समस्याओं पर भाषण देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

3. चर्च के पादरियों एवं अधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार राज्य को दे दिया।

4. चर्च के सेमिनार्स या शिक्षा पद्धति की जांच के लिए निरीक्षकों की नियुक्ति की गई।

5. जर्मन विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त ग्रेजुएट ही कैथोलिक चर्च के पदाधिकारी होंगे।

6. जनता को धर्म बहिष्कृत करने का अधिकार चर्च से छीन लिया गया।

7. अनुचित ढंग से धार्मिक दण्ड प्राप्त लोगों को राज्य न्यायालयों में अपील करने का अधिकार प्रदान किया।

किन्तु पोप ने इन कानूनों को अवैध बताया और कैथोलिक जनता को आदेश दिया कि वह इन कानूनों को मानने से इन्कार कर दे। इस प्रकार सम्पूर्ण देश में तीव्र संघर्ष प्रारम्भ हो गया। विस्मार्क ने कानूनों की अवहेलना करने वालों के प्रतति कठोर दमन नीति अपनायी। उसने घोषणा की दृ "मैं कैनोसा नहीं जाऊंगा, न तन से और न मन से"

यह संघर्ष पाँच वर्षो तक चलता रहा। अनेकों कैथोलिकों एवं पादरियों को जेल में डाल दिया गया। 800 धार्मिक जिलों में चर्च बन्द कर दिए गए किन्तु कैथोलिक जनता अपने धर्म में अटूट आस्था रखती थी और धार्मिक संकट की स्थिति में बड़े से बड़ा बलिदान देने को तैयार थी। अतः कैथोलिक दल का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इसी समय अवसर का लाभ उठाकर समाजवादियों ने देश में अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू कर दिया। विस्मार्क जर्मन साम्राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से कैथोलिकों की अपेक्षा समाजवादियों को अधिक बड़ा खतरा मानता था। अतः समाजवादियों की बढ़ती शक्ति, अर्न्तराष्ट्रीय परिस्थितियों में परिवर्तन, कैथोलिक विरोधी नीति की कटु आलोचना, राज्य की खराब होती आर्थिकक स्थिति को देखते हुए बिस्मर्क ने कैथोलिकों से समझौता करना उचित समझा। सौभाग्य से इसके लिए अनुकूल वातावरण भी बन गया। फरवरी 1878 ई0 में पोप पायस नवम् की मृत्यु हो गई और उसका उत्तराधिकारी उदारवादी लियो तेरहवा हुआ। बिस्मार्क ने नए पोप से वार्ता आरम्भ कर दी। मई कानूनों का प्रयोग शिथिल कर दिया गया और 1878 ई0 के अन्त तक सांस्कतिक संघर्ष समाप्त हो गया। 1880 ई0 में बिस्मार्क और पोप के बीच समझौता हो गया, जिसके अनुसार विस्मार्क ने मई कानूनों को वापस ले लिया, जर्मनी एवं पोप के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गए। पोप ने बिस्मार्क को आर्डर आफ द क्राइस्ट की उपाधि से विभूषित किया। लिप्सन का मत है कि "इस संघर्ष में विजय कैथोलिक पादरियों की हुई और उन्हें अधिकांश पुरानी शक्ति पुनः प्राप्त हो गई, जिसे छिनने के लिए विस्मार्क ने प्रयास किया था।"

2.6 समाजवादियों के साथ संघर्ष

जर्मनी में कार्लमार्क्स और फर्डिनेण्ड लैसले ने पूंजीवादी के विरूद्ध मजदूरों को संगठित कर समाजवाद का प्रचार किया। 1848 ई0 में लैसले ने जर्मनी में समाजवादी दल की स्थापना की किन्तु तत्कालीन सरकार ने कठोर नीति अपनाकर 1863 ई0 तक इसे विकसित नहीं होने दिया। कार्लमार्क्स ने इस दल को विरोध में एक अन्य समाजवादी दल की स्थापना की, किन्तु 1875 ई0 में गोथा नामक स्थान पर दोनों दलों में सन्धि हो गई और दोनों ने अपने समान कार्यक्रम निश्चित किए। जर्मनी के समाजवादी बिस्मार्क की एकतंत्रवादी शासन के घोर विरोधी थे। उन्होंने सरकार से माँग की कि उसे संसाधनों पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहिए और उद्योग धन्धों का राष्ट्रीयकरण करके जनता अर्थात् श्रमिकों का कल्याण करना चाहिए। वे श्रमिकों को राज्य में समस्त आर्थिक, गुप्त मतदान व्यवस्था, समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता, नागरिकों के राजनीतिक अधिकारों तथा श्रमिकों के संरक्षण सम्बन्धी अधिकारों की मांग की।

जर्मनी में समाजवादियों के प्रभाव में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। 1872 ईव में संसद में समाजवादी दल के मात्र 2 सदस्य थे, किन्तु 1877 के चुनाव में उनकी संख्या 14 हो गई। विस्मार्क और सम्राट विलियम प्रथम दोनों देश की शासन व्यवस्था के लिए समाजवादी दल को घातक मानते थे। अतः कुल्चुर कैम्प से मुक्ति पाकर उसने समाजवादियों का दमन करने का निश्चय किया। जब 1878 ईव में सम्राट की हत्या का प्रयास किया गया, तब विस्मार्क ने समाजवादियों के ऊपर हत्या के षड़यन्त्र का आरोप लगाया और उन्हें राज्य एवं समाज का शत्रु घोषित कर दिया। विस्मार्क ने समाजवादियों के विरूद्ध संसद में कई कानून पपास कराया। इन कानूनों के अनुसार समाजवादी दल की सभाओं एवं प्रकाशनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सन्देह का कानून पारित कराकर राजद्रोह के संदेह में पुलिस को किसी भी व्यक्ति को बन्दी बनाने का अधिकार दे दिया। उसने

समाजवादी संगठनों को गैर कानूनी घोषित करा दिया तथा समाजवादियों को चेतावनी दे दी कि यदि आवश्यक हुआ तो देश में सैनिक नियम लागू किया जा सकता है। इन कानूनों को कठोरता के साथ लागू किया गया और हजारों समाजवादियों को बंदी बना लिया गया तथा अनेकों देश छोड़कर विदेश भाग गए। किन्तु समाजवादी गुप्त ढंग से अपना कार्य निरन्तर करते रहे। विस्मार्क की कठोर नीति समाजवादियों के प्रभाव को नष्ट करने में असफल रही। 1890 ईव के चुनाव में समाजवादियों को 14.5 लाख मत प्राप्त हुए और 35 सदस्य निर्वाचित हुए।

राज्य समाजवाद – समाजवादियों की शक्ति एवं प्रभाव को समाप्त करने के लिए विस्मार्क ने जहाँ एक ओर दमनकारी उपायों का सहारा लिया, वही दूसरी ओर श्रमिकों की दशा में सुधार के लिए कई कार्य किए। इस योजना को 'राज्य समाजवाद' कहा गया। इसका उद्देश्य श्रमिकों को शासन का समर्थक बनाना था। विस्मार्क ने घोषणा की कि "मैं उन समस्त उपायों की शरण लूंगा, जिनके द्वारा श्रमिकों की दशा उन्नत हो सकती है।"" 1881 ईव में रीरवस्टांग के समक्ष सम्राट ने भाषण में कहा गया कि श्रमिकों की दसा में सुधार करना, समाजिक बुराईयों का निराकरण और सम्पूर्ण प्रजा विशेषकर निर्बल वर्ग का कल्याण करना राज्य का नैतिक कर्तव्य है। अतः विस्मार्क ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कानून बनाए–

1. 1883 ईव में रोग बीमा कानून पारित कराकर अनिवार्य बीमा योजना लागू की गई। इस कानून के अनुसार श्रमिकों को उनकी बीमारी के समय दैनिक मजदूरी का आधा अथवा तीन चौथाई भाग मिलता रहता था।

2. 1884 ईव में 'दुर्घटना बीमा एक्ट' पास करके दुर्घटनाग्रस्त मजदूर को एक निश्चित धनराशि आर्थिक सहायता के रूप में देने की व्यवस्था की गई।

3. 1887 ईव में श्रमिकों के काम के घण्टे निश्चित कर दिए गये, रविवार को अवकाश घोषित किया गया तथा यह व्यवस्था की गई कि सरकारी अधिकारी फैक्टरियों एवं खानों का निरीक्षण करेंगे।

4. 1889 ईव में वृद्धावस्था बीमा एक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार श्रमिकों को वृद्धावस्था बीमा किये जाने की व्यवस्था की गई।

वास्तव में बिस्मार्क के ये सुधार क्रान्तिकारी थे। इन सुधारों से औद्योगिक उन्नति को बल मिला। अतः मिल मालिक एवं पूंजीपति जो पहलेसुधारों के विरोधी थे, अब विस्मार्क के समर्थक हो गये। प्रोव डासन का कथन है 'बिस्मार्क 19वीं सदी का अग्रणी समाजसुधारक था, जिसकी योजना से श्रमिकों को समाजिक सुरक्षा प्राप्त हो गई।" यद्यपि बिस्मार्क द्वारा श्रमिक सुधारों का प्रयास किया गया किन्तु वह समाजवादियों के प्रभाव में कमी लाने में असफल रहा। क्योकि समाजवादी उन्हें सर्वथा अल्प उपयोगी मानते ते। बिस्मार्क के राज्य समाजवाद का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि बिस्मार्क की योजना समाजवादी नहीं थी, क्योंकि समाजवाद का मूल सिद्धान्त पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध करना होता है, जबकि बिस्मार्क पूंजीवाद का समर्थक थी। उसके अतिरिक्त समाजवाद का उद्देश्य जनतंत्र की स्थापना करके सामाजिक व्यवस्था के आमूल परिवर्तन करना होता है, जबकि बिस्मार्क का उद्देश्य राजतंत्र की रक्षा करना था। वास्तव में राज्य समाजवाद समाजवादी आन्दोलन को रोकने का एक राजनीतिक हथियार था।

आर्थिक संरक्षण नीति – 1870 ईव जब जर्मनी का एकीकरण हुआ, उस समय देश की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी और औद्योगिक क्षेत्र में वह काफई पिछड़ा हुआ था। अतः विस्मार्क के समक्ष राष्ट्रीय औद्योगिक नाति की समस्या उठ खड़ी हुई।

विदेशों में अनाज आयात होने से कृषकों की दशा खराब हो गई। मुद्रा स्फीति के कारण जर्मन मुद्रा का मूल्य गिर गया तथा वस्तुओं की कीमते बढ़ गई। अतः देश की आर्थिक दशा में सुधार के उद्देश्य से बिस्मार्क ने संरक्षण की नीति का अनुसरण किया। विस्मार्क ने अनुभव किया कि फ्रांस, आस्ट्रिया, रूस, अमेरिका आदि देश संरक्षण की नीति पर चलकर निरन्तर समृद्ध होते जा रहे है और मुक्त व्यापार का पक्षपाती इंग्लैण्ड भी संरक्षण नीति की ओर झुकता जा रहा है। अतः विस्मार्क ने मुक्त व्यापार नीति का परित्याग कर संरक्षण नाति अपनाने का निश्चय किया।

सन् 1879 ईव में एक कानून बनाकर बिस्मार्क ने बाहर से आयात की जाने वाली वस्तुओं एवं अनाज पर उच्च दर से आयात शुल्क लगा दिया। इस नीति के फलस्वरूप जर्मन किसानों को तो लाभ हुआ। साथ ही साथ नवस्थापित उद्योगों का तेजी से विकास होने लगा। देशी माल की खपत में वृद्धि से देश में सैकड़ों कल कारखानों की स्थापना की गई। विस्मार्क ने अनेक देशों से व्यापारिक समझौते किए अतः जर्मनी का माल विदेशी बाजारों में भी बिकने लगा। और विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई। शीघ्र ही जर्मनी की गणना विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों में होने लगी। उक्त संरक्षण की नीति ने जर्मनी की आंतरिक राजनीति को भी प्रभावित किया। इसके फलस्वरूप सेन्टर पार्टी बिस्मार्क का समर्थन करने लगी।

2.7 बिस्मार्क की विदेश नीति आस्ट्रिया के विशेष सन्दर्भ मे

नव जर्मन साम्राज्य का प्रथम चांसलर बिस्मार्क बना। यद्यपि जर्मनी का सम्राट विलियम प्रथम का किन्तु शासन शक्ति बिस्मार्क के हाथों में थी। 1871 से 1890 ईव तक वह यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु बना रहा। वास्तव में बिस्मार्क की विदेश नीति एक व्यक्ति की नहीं अपितु एक राष्ट्र, एक महाद्वीप और एक युग की विदेश नीति थी।

बिस्मार्क की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य नवनिर्मित जर्मन साम्राज्य स्थायित्व देना तथा यूरोप की राजनीति में जर्मनी का प्राधान्य बनाए रखना था। मेटरनिरव के समान ही विस्मार्क का भी प्रयास था कि यूरोप में यथापूर्व स्थिति बना रहे। वह जानता था कि यूरोप की शान्ति 2 कारणों से असन्तुलित हो सकती है, प्रथम, फ्रांस की प्रतिशोध की भावना से और द्वितीय, बाल्कान क्षेत्र में आस्ट्रिया व रूस के बीच प्रतिद्वन्दिता से। अतः विस्मार्क ने सदैव यह प्रयास किया कि एक ओर फ्रांस को मित्रहीन बनाए रखा जाय और दूसरी ओर आस्ट्रिया व रूस के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

बिस्मार्क की विदेश नीति के मूल्य सिद्धान्त — बिस्मार्क की विदेश नीति के मूल उद्देश्य या सिद्धान्त निम्नलिखित थे–

1. बिस्मार्क ने साम्राज्य विस्तार की नीति त्यागकर महाद्वीपीय शान्ति की नीति का अनुसरण किया ताकि जर्मन साम्राज्य का विघटन न हो और उसे विकास के लिए सुअवसर प्राप्त हो, अतः उसने घोषणा की कि 'जर्मनी एक सन्तुष्ट देश है'

2. फ्रांस को यूरोप की राजनीति में मित्रहीन एवं अलग–अलग रखा जाय ताकि वह अल्सास व लारेन प्रदेश को जिन्हें जर्मनी ने छिन लिया था, वापस पाने का प्रयास न कर सकें और यदि करे तो असफल रहें।

3. बिस्मार्क ने यूरोप में पथास्थिति बनाए रखने का सिद्धान्त अपनाया। वह चाहता था कि यूरोप के राज्यों की सीमाओं को वैधानिक रूप से मान्य रखा जाय।

4. आस्ट्रिया, रूस, इंग्लैण्ड एवं इटली इन चार प्रमुख देशों से घनिष्टथा स्थापित किया जाय ताकि यूरोप में शान्ति व्यवस्था बनी रहें।

5. फ्रांस को आन्तरिक रूप से निर्बल बनाए रखा जाए। इस दृष्टि से फ्रांस में गणतंत्रीय व्यवस्था का समर्थन किया जाए, क्योंकि इस व्यवस्था के अन्तर्गत फ्रांस आपसी मतभेदों का शिकार बना रहेगा।

6. इंग्लैण्ड के प्रति तटस्थता की नीति का पालन किया जाए, यही कारण था कि विस्मार्क ने इंग्लैण्ड की नौसेना के विरूद्ध जर्मनी की नौशक्ति के विकास का विचार त्याग दिया था।

7. जर्मन विदेश नीति में पूर्वी समस्या को कोई महत्व न दिया जाय। वह पूर्वी समस्या को एक महत्वहीन समस्या मानता था। उसने कहा था—कुस्तुनतुनिया से आने वाली डाक को मैं कभी नहीं खोलता।"

बिस्मार्क द्वारा आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध बनाना — बिस्मार्क ने उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर यूरोप के विभिन्न देशों के साथ राजनीतिक सम्बन्ध बनाए तथा सन्धियाँ की। फ्रांस को एकाकी बनाए रखने के उद्देश्य से बिस्मार्क ने आस्ट्रिया एवं रूस केन्द्रित विदेश नीति का अनुगमन किया। जर्मनी व रूस के बीच पहले से ही मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। अतः मुख्य समस्या आस्ट्रिया के साथ मित्रता की थी। जून 1871 ई0 में जब आस्ट्रिया से जनरल वॉन गॉबलेज जर्मनी आया, तब बिस्मार्क ने गॉबलेज को विश्वास दिलाया कि समाजवादियों के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए आस्ट्रिया और जर्मनी के बीच सहयोग आवश्यक है। आस्ट्रिया का विदेश मंत्री काउण्ट एद्रासी भी जर्मनी व रूस की मैत्री से आशंकित था। उसकी इच्छा थी कि जर्मनी जैसा शक्तिशाली देश आस्ट्रिया का मित्र बन जाए।

त्रिसम्राट संघ — एक ओर विस्मार्क आस्ट्रिया व जर्मनी के बीच मित्रता का वातावरण तैयार करने में लगा था, वहीं दूसरी ओर रूस स्थित जर्मन राजदूत के माध्यम से रूस के जार के पास संदेश भेजा कि क्रान्तिकारियों एवं गणतन्त्रवादियों की संगठित शक्ति का सामना करने एवं यूरोप में शान्ति बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया के सम्राट परस्पर मैत्री सम्बन्ध में आबाद्ध हो। अतः सितम्बर 1872 ई0 में जब आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस जोसेफ ने बर्लिन की यात्रा की, तो रूस का जार एलेक्जेण्डर द्वितीय भी बर्लिन आया। इस प्रकार तीनों देशों के सम्राटों का मधुर मिलन हुआ। यद्यपि उस समय तीनों सम्राटों के बीच आई समझौता नहीं हुआ, लेकिन समझौते की आपसी सहमति बन गई। 1823 ई0 में जर्मन सम्राट विलियन प्रथम ने सेन्ट पीटसबर्ग की यात्रा की, तब रूस एवं जर्मनी के बीच एक सैनिक समझौता हुआ। इसी बीच रूस के जार ने वियना की यात्रा की और आस्ट्रिया के साथ एक समझौता किया। इस समझौते को जर्मन सम्राट ने भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार 'त्रिसम्राट संघ' का निर्माण हुआ। इस संधि की मुख्य शर्ते निम्नलिखित थी दृ

1. यूरोप की शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए तीनों देश परस्पर करेंगे। यदि कोई अन्य शक्ति भंग करेगा, तो तीनों देश मिलकर समस्या का समाधान ढूढेंगे।

2. यदि किसी समस्या पर तीनों देश के हित परस्पर भिन्न हो, तो तीनों देश आपसी सहयोग से मतभेदों को दूर करने का प्रयास करेंगे।

3. 1871 ई0 की प्रादेशिक व्यवस्था को बनाए रखा जाएगा

यह त्रिसम्राट संघ 1877 ई0 तक चलता रहा। किन्तु पूर्वी समस्या के सम्बन्ध में आस्ट्रिया व रूस के बीच उत्पन्न मतभेदों को दूर करने के उद्धेश्य से आयोजित बर्लिन सम्मेलन 1878 ई0 में विस्मार्क के दृष्टिकोण से रूस रूष्ट हो गया और उसने त्रिसम्राट संघ की सदस्यता छोड़ने की घोषणा कर दी।

द्विराष्ट्र सन्धि – 1878 ई0 की बर्लिन संधि के फलस्वरूप रूस व जर्मनी के सम्बन्ध कटु हो गए। फ्रांस व जर्मनी की शत्रुता पहले से चली आ रही था। अतः जर्मनी के समक्ष यह संकट उत्पन्न हो गया कि फ्रांस व रूस के बीच मित्रता स्थापित हो गई, तो जर्मनी की सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी। ऐसी परिस्थिति में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को सबसे उपयुक्त मित्र देश माना, क्योंकि बिस्मार्क का विचार था कि संसदीय देशओं के साथ हुई मैत्री स्थायी नहीं हो सकती। अतः विस्मार्क ने 1879 ई0 वियना की यात्रा की और आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री एन्द्रासी से सन्धि वार्ता शुरू कर दी। अंततः 7 अक्टूबर 1979 ई0 को दोनों देशा के बीच एक गुप्त सन्धि हो गई। इस सन्धि की मुख्य शर्ते निम्निलिखित थी दृ

1. यदि रूस द्वारा जर्मनी या आस्ट्रिया पर आक्रमण किया जाएगा, तो वे संयुक्त रूप से युद्ध करेगे।
2. यदि जर्मनी या आस्ट्रिया पर फ्रांस आक्रमण करेगा तो दूसरा मित्र तटस्थ रहेगा।
3. यदि कोई अन्य देश रूस की सहायता से जर्मनी अथवा आस्ट्रिया पर आक्रमण करेगा, तो दूसरा देश उसकी सहायता करेगा।
4. यह सन्धि गुप्त रहेगी और पाँच वर्ष पश्चात् तीन–तीन वर्ष के लिए बढ़ाई जा सकेगी।

इस सन्धि द्वारा विस्मार्क ने दो उद्देश्य की पूर्ति कर ली। प्रथम रूस के विरूद्ध उसे आस्ट्रिया का सहयोग मिल गया। द्वितीय फ्रांस एवं जर्मनी के बीच युद्ध होने पर आस्ट्रिया फ्रांस का समर्थन नहीं करेगा। वास्तव में विस्मार्क की इस नीति से अन्तर्राष्ट्रीय गुट निर्माण का वह सिलसिला शुरू हो गया, जो प्रथम विश्व युद्ध के आरम्भ तक यूरोपीय कूटनीतिक क्षेत्र में अपना प्रभाव बनाए रखा।

त्रिसम्राट संघ की पुनः स्थापना (1881 ई0) – यद्यपि बर्लिन संधि के कारण जर्मनी और रूस के सम्बन्धों में कटुता आ गई थी और रूस त्रिसम्राट संघ से विमुख हो गया था, किन्तु बिस्मार्क रूस से पुनः मित्रता के पक्ष में था। रूस में भी ऐसे पदाधिकारी थे, जो जर्मनी के साथ मैत्री सम्बन्ध चाहते थे। अत विस्मार्क के प्रयासों से रूस से पुनः वार्ता शुरू हुई। इसके फलस्वरूप त्रिसम्राट संघ पुनः जीवित हो गया। 18 जून 1881 ईव को बार्लिन में जर्मनी, रूस एवं आस्ट्रिया के राजदूतों ने त्रिसम्राट समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए। इस समझौते के अन्तर्गत यह निश्चित हुआ कि यदि तीनो देशों में से किसी एक को चौथी शक्ति के साथ युद्ध करना पड़ा तो शेष तो राष्ट्र तटस्थ रहेंगे। तीनों देशों ने बाल्कान क्षेत्र में एक दूसरे के हितों का ध्यान रखने का आश्वासन दिया। वास्तव में यह एक गुप्त सन्धि थी और 3 वर्ष के लिए थी। 1884 ईव में इसे बिना किसी परिवर्तन के पुनः स्वीकार कर लिया गया, किन्तु बिस्मार्क के पतन के 3 वर्ष पूर्व 1887 ईव में यह संघ समाप्त हो गया।

त्रिराष्ट्र सन्धि (1882 ई0) – जर्मन साम्राज्य को अधिक सुरक्षित बनाए रखने के लिए बिस्मार्क ने इटली से मैत्री सम्बन्ध बनाने की ओर ध्यान दिया। वह इटली एवं

फ्रांस के बीच मित्रता को जर्मनी के लिए बड़ा खतरा मानता था। दूसरी ओर जर्मनी के मित्र देश आस्ट्रिया पर इटली व रूस ने आक्रमण का भय था। अतः जब 1881 ईव में फ्रांस ने ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया और इटली फ्रांस से नाराज हो गया, तब बिस्मार्क ने इटली के साथ मित्रता का प्रयास शुरू कर दिया। अतः 20 मई 1882 ईव को जर्मनी, इटली व आस्ट्रिया के बीच एक सन्धि हुई। त्रिराष्ट्र या त्रिगुट सन्धि कहते है। इस सन्धि द्वारा यह निश्चित किया गया कि यदि फ्रांस द्वारा जर्मनी अथवा इटली पर आक्रमण किया जायेगा तो दोनो मित्र देश संयुक्त रूप से सामना करेंगे। तीनों देश राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याएं परस्पर विचार विमर्श द्वारा हल करेगे। इटली के आग्रह पर यह निश्चित किया गया कि इस सन्धि की शर्तो का प्रयोग इंग्लैण्ड के विरूद्ध नहीं किया जाएगा।

इस रक्षात्मक सन्दि की अवधि 5 वर्ष थी और तीन वर्षो के लिए बढ़ाई जा सकती थी। 1915 ईव तक इस सन्धि का नवीनीकरण होता रहा। इस त्रिगुट सन्धि के फलस्वरूप मध्य यूरोप में जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली तीन देशों का एक शक्तिशाली गुट बन गया। वास्तव में यह सन्धि विस्मार्क की कूटनीतिक दूरदर्शिता की प्रमाण थी। आस्ट्रिया व इटली के बीच परस्पर शत्रुता थी, किन्तु बिस्मार्क ने दोनों देशों को जर्मनी का मित्र बनाकर यूरोप की राजनीति में एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

इस सन्धियों के अतिरिक्त बिस्मार्क ने 1883 ईव में रूमनिया के साथ मैत्री सन्धि की तथा 1887 ईव में रूस के साथ पुनराश्वासन सन्धि करके अपनी कूटनीतिक सफलता का उदाहरण दिया।

आस्ट्रिया के प्रति बिस्मार्क का झुकाव — बिस्मार्क ने रूस की तुलना में आस्ट्रिया को अधिक महत्व देकर 1879 में द्विंराष्ट्र मैत्री सन्धि की। रूस की अपेक्षा आस्ट्रिया की ओर जर्मनी का झुकाव क्यों अधिक था, इसके पक्ष में इतिहासकार निम्निलिखित तर्क देते है दृ

1. विस्मार्क मध्य यूरोप में अपना एक शक्तिशाली संगठन बनाना चाहता था, जो आस्ट्रिया से सन्धि कर लेने पर पूर्ण हो गया। विस्मार्क जानता था कि आस्ट्रिया से सन्धि होने के तुरन्द बाद रूमानिया भी गठबन्धन में शामिल हो जाएगा और तब डेन्यूब नदी के सम्पूर्ण क्षेत्र पर उसके संगठन का नियन्त्रण स्थापित हो जाएगा।

2. जर्मनी के एकीकरण की जो प्रक्रिया 1860 में प्रारम्भ हुई थी, वह आस्ट्रो जर्मन सन्धि के कारण युक्तियुक्त ढंग से पूर्ण हो गई, क्योंकि इस सन्धि से मध्य यूरोप के दोनों राज्यों का एक ऐसा शक्तिशाली गुट बन गया, जो यूरोप में किसी भी चुनौती का मुकाबला कर सकता था।

3. आस्ट्रिया से गठबन्धन करने पर जर्मनी को दक्षिण पूर्वी यूरोप में जर्मन प्रभाव के प्रसार का सुअवसर प्राप्त हो सकता था। इस दिशा में इंग्लैण्ड द्वारा बाधा उत्पन्न किये जाने की सम्भावना इसलिए नहीं थी, क्योंकि इंग्लैण्ड उस क्षेत्र में रूस के प्रभाव को रोकना चाहता था।

4. विस्मार्क को यह विश्वास था कि आस्ट्रिया से मैत्री संधि कर लेने पर जर्मन साम्राज्य को इंग्लैण्ड का सहयोग भी प्राप्त हो जाएगा।

5. रूस के साथ मैत्री सन्धि करने पर यह आवश्यक हो जाता कि जर्मनी रूस की बाल्कान सम्बन्धी नीति का समर्थन करे। इससे तुर्की पर रूसी प्रभाव की

स्थापना का भय था। जबकि आस्ट्रिया की बाल्कान नीति का नियन्त्रण पाना सुगम था।

6. बिस्मार्क को आशा थी कि आस्ट्रिया और जर्मनी मिलकर रूस तथा अन्य स्लाव राज्यों के 'अखिल स्लाववाद' को रोक सकेंगे। यह स्लाववाद जर्मनी के विरूद्ध क्रियाशील था।

वास्तव में आस्ट्रिया के साथ मैत्री संधि बिस्मार्क की सुरक्षा व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण अंग था और विस्मार्क यह व्यवस्था बनाए रखने में इतना सफल रहा कि 19118 तक आस्ट्रिया और जर्मनी की मित्रता कायम रही।

2.8 सारांश

नव जर्मन साम्राज्य के प्रथम चांसलर के रूप में बिस्मार्क ने लगभग 20 वर्षो तक जर्मनी की विभिन्न आन्तरिक समस्याओं का दृढ़तापूर्वक सामना किया। उसने कठोरता एवं समझौतावादी दोनों नीतियाँ अपनायी। बिस्मार्क ने कैथोलिक चर्च और समाजवादियों के प्रति कठोर दमन की नीति का अनुसरण किया। परन्तु जब स्थिति विषम हो गई, तब उसने कैथोलिकों से समझौता कर लिया और राज्य समाजवाद के माध्यम से समाजवादियों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न भी किया। यद्यपि वह समाजवादियों के प्रभाव को समाप्त नहीं कर सका। तथापि वह अपने जीवनकाल में समाजवादियों को राजनीतिक शक्ति नहीं बनने दिया। उसने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए संरक्षण की नीति अपनायी और जर्मनी को विश्व का एक प्रमुख औद्योगिक देश बना दिया। विदेश नीति के क्षेत्र में विस्मार्क ने जर्मनी के लिए एक सन्धि परक सुरक्षा की व्यवस्था की। जिसमें विभिन्न पड़ोसी देशों से गुप्त सन्दियाँ की। वह जानता था कि जर्मनी की सुरक्षा के लिए सैनिक शक्ति सुदृढ़ होना आवस्यक है। अतः उसने जर्मनी की सैनिक शक्ति में वृद्धि कर उसे एक शक्तिशाली देश के रूप में परिणत कर दिया। विस्मार्क ने अपनी संधि व्यवस्थाओं का सफल संचालन किया और अपने शासन काल में जर्मनी के विरूद्ध किसी शक्तिशाली गुट को उभरने नहीं दिया और यूरोप में शान्ति एवं स्थायित्व बनाए रखा।

2.9 बोध प्रश्न

1. बिस्मार्क की गृहनीति का वर्णन कीजिए।
2. कुल्चुर कैम्प से आप क्या समझते है? इसके प्रति विस्मार्क के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
3. समाजवादियों के प्रति विस्मार्क की नीति का परीक्षण कीजिए।
4. बिस्मार्क की विदेश नीति पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

इकाई–3 फ्रांस की तृतीय गणतंत्र

इकाई की रूप रेखा

3.0. उद्देश्य

3.1. प्रस्तावना

3.2. अस्थायी गणतंत्र सरकार एवं पेरिस का विद्रोह

3.3. थीयर्स सरकार का शासन एवं राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण

3.4. मैक मोहान का शासन एवं तृतीय गणतंत्र का संविधान

3.5. फ्रांसीसी गणतंत्र पर संकट

3.6. तृतीय गणतंत्र की विदेशी नीति

3.7. सारांश

3.8. बोध प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जाने सकेंगें कि

- ❖ 1870 ईव में नेपोलियन तृतीय की सेडान युद्ध में पराजय के बाद फ्रांस में तृतीय गणतंत्र की स्थापना कैसे हुई।
- ❖ फ्रांस में पेरिस कम्यून का विद्रोह क्यों हुआ।
- ❖ थीयर्स की सरकार ने राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण के लिए क्या सुधार कार्य किए।
- ❖ तृतीय गणतंत्र के संविधान की रूपरेखा क्या थी।
- ❖ फ्रांसीसी तृतीय गणतंत्र के सम्मुख कौ न से संकट उत्पन्न हुए।
- ❖ तृतीय गणतंत्र काल में विदेशनीति के क्षेत्र में विभिन्न देशो के साथ मैत्री स्थापना के लिए क्या प्रयास किए गए।

3.1 प्रस्तावना

सेडान के युद्ध में नेपोलियन तृतीय की पराजय के दो दिन पश्चात् ही 4 सितम्बर 1870 ई को पेरिस में व्यवस्थापिका सभा द्वारा तृतीय गणतंत्र की घोषणा कर दी गई। गणतंत्र का शासन चलाने के उद्देश्य से एक अस्थायी राष्ट्रीय सुरक्षा सरकार की स्थापना की गई। फ्रांस का प्रशासन इस अस्थायी गणतंत्र द्वारा 1875 ईव को प्रतिनिधी सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार कर फ्रांस में 'स्थायी गणतंत्र' की स्थापना की, जिसे तृतीय गणतंत्र के नाम से जाना जाता है। यह तीसरा गणतंत्र पिछले गणतंत्रो के मुकाबले दीर्घजीवी रहा और 1946 ईव तक कार्य किया।

3.2 फ्रांस में अस्थायी गणतंत्र सरकार की स्थापना

अस्थायी गणतंत्र की सरकार के समक्ष जर्मन सेना के आक्रमण का संकट छाया हुआ था। राष्ट्रीय सुरक्षा सरकार के युद्धमंत्री गेम्बेटा ने कुशलतापूर्वक सुरक्षा व्यवस्था का गठन किया और पेरिस की ओर बढ़ती जर्मन सेना का साहसपूर्वक मुकाबला किया किन्तु जर्मन सेना जनवरी 1871 ईव में पेरिस पर अधिकार करने में सफल हो गई। गेम्ब्रेटा एवं कुछ गणतंन्त्रवादी जर्मनी के विरूद्ध युद्ध जारी रकना चाहते थे, किन्तु फ्रांस की जनता के बढ़ते कष्टो एवं युद्ध की प्रतिकूल परिस्थितियों को देखकर पेरिस की सरकार ने युद्ध विराम की घोषणा कर दी।

फरवरी 1871 ईव में फ्रांस में आम चुनाव हुए। इस चुनाव में राजतंत्रवादियो को बहुतम प्राप्त हुआ। राजतंत्रवादी युद्ध को जारी रखने के विरोदी थे। 17 फरवरी को वार्साय में राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में थीयर्स के गणतंत्र का कार्यपालिका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। साथ ही राष्ट्रीय सभा ने थीयर्स को जर्मनी के साथ शान्ति सन्धि करने का पूर्ण अधिकार भी सौपा। युद्ध में जर्मनी का पलडा इतना भारी था कि फ्रांस को कई अपमानजनक शर्ते मानने को बाध्य होना पड़ा। 10 मई 1871 ईव को फ्रांस एवं जर्मनी के बीच फ्रेंकफर्ट की सन्धि हो गई। सन्धि की शर्त के अनुसार फ्रांस को अल्सास एवं लारेन प्रान्त से हाथ धोना पड़ा।

फ्रांस में गृह युद्ध : पेरिस कम्यून का विद्रोह — फ्रांस एवं जर्मनी के बीच युद्ध समाप्ति के पश्चात् फ्रांसीसी जनता शांति की अपेक्षा कर रही थी। किन्तु इसी समय अस्थायी गणतंत्र सरकार को एक भीषण गृह युद्ध का सामना करना पड़ा। अस्थायी सरकार एवं पेरिस कम्यून के बीच मार्च 1871 ईव से मई 1871 ईव तक भीषण सघर्ष चला। इस गृह युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1. पेरिसवासी फ्रांस में गणतंत्र की स्थापना चाहते थे, जबकि राष्ट्रीय सभा में राजतंत्र वादियो की संख्या अधिक थी। ग्राण्ट एवं टेम्परले ने लिखा है कि 'जब राष्ट्रीय सभा में संविधान निर्माण के प्रश्न को स्थगित किया तो पेरिस के लोगो को यह भय होने लगा कि राष्ट्रीय सभा फ्रांस में राजतंत्र की स्थापना करना चाहती है। इस गृहयुद्ध का मुख्य कारण यही भय था।'

2. जर्मनी के साथ लम्बे युद्ध के फलस्वरूप पेरिस और फ्रांस के अन्य भागो के बची संतुलनध्सम्पर्क नष्ट हो गया। राजधानी और प्रान्तो का पारस्परिक सम्पर्क टूट जाने से दोनो की नीति परस्पर विरोधी दशाओं में विकसित होने लगी। पेरिसवासियो को फ्रेंकफर्ट की अपमानजनक शर्ते असहनीय थी। अतः सरकार के विरूद्ध उनका असंतोष भड़क उठा।

3. मार्च 1871 ईव में राष्ट्रीय सभा ने पेरिस के स्थान पर वार्साय को फ्रांस की राजधानी बनाने का प्रयास किया। पेरिसवासी इस अपमान को सहने हेतु तैयार नहीं थे। वार्साय सदियों से बूर्बोवंश के शासकों का गढ़ रहा था। अतः पेरिसवासियों को लगा कि यह फ्रांस में राजतंत्र की स्थापना का एक कदम है।

4. पेरिस की जनता अपार आर्थिक कष्टो से जूझ रही थी। पेरिस की सरकार ने जनता को स्थिति से निपटने के लिए ऋण दिए थे। राष्ट्रीय सभा ने सभी ऋणो को लौटाने का आदेश दिया। पेरिस की जनता के लिए यह आदेश आर्थिक संकट को बढ़ने वाला था। अतः उन्होने राष्ट्रीय सभा का विरोध किया।

5. फ्रांस एवं जर्मनी युद्ध के समय नेशनल गार्ड (राष्ट्रीय सुरक्षा प्रहरी) की संख्या में भारी वृद्धि हो गई थी। राष्ट्रीय सभा इससे भयभीत हो गई और उसमें कानून द्वारा इसे भंग कर दिया। इसके फलस्वरूप लाखों लोग बेकार हो गए और चारो ओर असंतोष बढ़ गया।

6. पेरिस की जनता फ्रांस में कम्प्यून के संघ की स्थापना चाहती थी। दूसरी ओर राष्ट्रीय सभा इस प्राकर के शासन का विरोध कर रही थी। अतः परस्पर विरोधी विचारधाराओं के कारण यह संघर्ष हुआ।

7. पेरिस की जनता विद्रोह के लिए तैयार थी। पेरिस विद्रोही तत्वो से भरा पड़ा थी। अजातकतावादी, पराजित, सैनिक, मजदूर, समाजवादी, जैकोबीन आदि तत्वों ने असन्तोष को भड़काने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

विद्रोह की घटनाएं एवं संघर्ष – राष्ट्रीय सभा ने पेरिस में बढ़ते असन्तोष को देखते हुए वहां से उन तोपो को हटाने का आदेश दिया, जिन्हें जर्मनी के विरूद्ध युद्ध के समय वहाँ लगाया गया था। इससे विद्रोह की चिनगारी सुलग उठी तथा पेरिस की जनता ने तोप हटाने गए सैनिको को घेर लिया और उनके हथियार छीन लिया। अतः सैनिको को पेरिस से भागना पड़ा।

पेरिस पर अधिकार के पश्चात 26 मार्च 1871 ईव को कम्प्यून के चुनाव हुए, जिसमें उग्र गणतंत्रवादी को सफलता मिली। पेरिस में कम्प्यून शासन स्थापित हो गया एवं लाल झण्डा फहराया गया। कम्प्यून की कार्यकारिणी ने एक घोषणापत्र जारी किया। विद्रोहियों ने माँग की कि देश में कम्प्यून के संघ की स्थापना की जाए। इस घोषणा पत्र में राष्ट्रीय सभा द्वारा स्थापलित शासन व्यवस्था को निरंकुश करार दिया गया और मांग की गई कि कम्प्यून को शासन के सभी मामलों में स्वशासन का अधिकार प्राप्त हो। इस घोषणापत्र के अनुसार केन्द्रीय शासन का आधार कम्प्यून (नगरपालिकाए) हो अर्थात् सम्पूर्ण फ्रांस समष्टिवाद के अनुसार संगठित नगरपालिकाओं का संघ हो।

थीयर्स की सरकार ने पेरिस कम्प्यून से समझौता हेतु प्रयास किया किन्तु वार्ता असफल रही। अतः थायर्स ने शक्ति के माध्यम से विद्रोह के दम का निश्चय किया और सेनापति मैकमहोन के नेतृत्व में एक सेना पेरिस पर अधिकार के लिए भेजा। मैकमहोन की सेना ने पेरिस को 2 अप्रैल से 21 मई तक घेरे रखा। पेरिस कम्प्यून ने भी विशाल सेना तैयार की। सरकार और कम्प्यून की सेना के बीच भीषण संघर्ष हुआ और 21 मई को मैकमहोन की सेना ने पेरिस में प्रवेश किया। किन्तु कम्प्यून की सेना ने सात दिनों तक नगर के हर भाग में सरकारी सेना को चुनौती दी। इस एक सप्ताह में सरकारी सेना ने विद्रोहियों को ढूढ–ढूढ़कर मौत के घाट उतारा। 17 हजार विद्रोही मारे गए और 45 हजार विद्रोही बन्दी बनाए गए। 28 मई को विद्रोहियों ने आत्मसमर्पण कर दिया और पेरिस पर अस्थायी सरकार का अधिकार हो गया।

पेरिस की जनता द्वारा किया गया यह विद्रोह देश हित में था अथवा नही? यह विवाद का विषय है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि तत्कालीन परिस्थितियों में कम्प्यून का विद्रोह देश के हित में नही था परन्तु दूसरी ओर कुछ इतिहासकारों का मानना है कि फ्रांस में गणतंत्र के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए यह आवश्यक था। कैटलबी के अनुसार–'इस विद्रोह से गणतंत्रवादियों को गहरा आघात लगा और जनतत्रवादियों को भारी बल मिला।'

3.3. थीयर्स सरकार का शासन एवं राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण

पेरिस कम्प्यून के विद्रोह के पश्चात कार्यपालिका अध्यक्ष थीयर्स ने राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण के लिए कार्य प्रारम्भ किया। इस सम्बन्ध में थीयर्स ने निम्नलिखित कार्य किए–

1. **युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान** – फ्रांस के सम्मुख सबसे मुख्य समस्या जर्मनी को युद्ध क्षतिपूर्ति की रकम अदायगी थी। जनता से 3 अरब फ्रांक की अपील की गई बदले में सरकार को 4200 करोड़ फ्रांक प्राप्त हुए। इस प्रकार फ्रांस ने दो वर्षो के अन्दर क्षतिपूर्ति की रकम चुकाकर जर्मन सैनिको को फ्रांस से हट जाने को विवश कर दिया। अतः फ्रांस की जनता ने थीयर्स को देश का मुक्तिदाता की उपाधि से सम्मानित किया।

2. **सैनिक सुधार** – फ्रांस की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के लिए थीयर्स ने सेना के पुर्नगठन पर ध्यान दिया। 1872 ईव में अनिवार्य सैनिक सेवा एक्ट पारित कर प्रत्येक पुरूष के लिए 5 वर्ष की सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी। इसके पश्चात सभी प्रशिक्षण प्राप्त सैनिको को रिजर्व सेना के रूप में रखा जाता था। जो व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त थे, उन्हे अनिवार्य सैनिक सेवा की अवदि 2 वर्ष रखी गई। थीयर्स ने फ्रांसीसी सेना का पुर्नगठन प्रशा की सैन्य पद्धति के आधार पर किया। उसने अनेक दुर्गो की मरम्मत कराई और अनेक नए किले बनवाए। इस प्रकार फ्रांस की सेना को शक्तिशाली बनाकर थीयर्स ने फ्रांस की सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया।

3. **आर्थिक क्षेत्र में सुधार** – फ्रांस की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए थीयर्स ने कई कार्य किए। उसने फ्रांस के व्यापार एवं उद्योग के विकास के लिए संरक्षण की नीति अपनायी जिसके आश्चर्य जनक परिणाम हुए। उसने आय तथा खनिज पदार्थ पर भी कर लगया किन्तु राष्ट्रीय सभा ने इसे अस्वीकार कर दिया। थीयर्स के प्रयासो से 1878 ईव में अन्तराष्ट्रीय प्रदर्शनी फ्रांस में हुई।

4. **स्थानीय स्वशासन में सुधार** – थीयर्स ने स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में कई सुधार किए। छोटे नगरो (ज्वूदे) में स्थानीय संस्थानों के अध्यक्षों के चुनाव की व्यवस्था प्रारम्भ की। प्रान्तो की सामान्य परिषदो को अपना अध्यक्ष चुनने तथा प्रान्तीय विषयो के लिए स्थायी समितियाँ नियुक्त करने का अधिकार प्रदान किया। थीयर्स परस्परवादी था, अतः उसने बहुत अधिक विकेन्द्रीकरण पर ध्यान नहीं दिया किन्तु उसने उपरोक्त सुधारों से फ्रांस में स्वशासन पद्धति का विकास हुआ।

5. **विधान का स्वरूप–निश्चय** – थीयर्स के सम्मुख सबसे प्रमुख समस्या यह थी कि फ्रांस के विधान का स्वरूप क्या हो। इस सम्बन्ध में सर्वसम्मत निर्णय बहुत कठिन था क्योकि राष्ट्रीय सभा में राजतन्त्रवादियों का बहुमत था। यद्यपि थीयर्स स्वयं भी राजतन्त्रवादी ता किन्तु वह जानता था कि फ्रांस की जनता गणतन्त्र की समर्थक है। अतः जनता की नब्ज पहचानते हुए थायर्स ने गणतन्त्र का समर्थन करना उचित समझा। उसने गणतन्त्र का समर्थन कहते हुए घोषणा की "गणतन्त्र–यह हमें सबसे कम विभाजित करता है"। नवम्बर 1872 ईव में राष्ट्रीयसभा के समझ अपने अध्यक्षीय सन्देश मे उसने गणतन्त्र का समर्थन करने की स्पष्ट घोषणा की। तब राजतन्त्रवादी दल ने बहुतम के बल पर मार्च 1873 ईव में एक कानून पास कराया, जिसके अनुसार विशेष अवसरो को छोड़कर राष्ट्रपति को राष्ट्रीय सभा से सीधा सम्पर्क का अधिकार नही रहा। इसी बीच गणतन्त्रवादी

का नेता गेम्बेटा ने राष्ट्रीयसभा भंगकर फ्रांस में गणतन्त्र स्थापना करने की मांग की। थीयर्स राजतंत्र एवं उग्रगणतंत्र के बीच मध्यम नीति पर चलना चाहता था। किन्तु इससे दोनो पक्ष उससे असन्तुष्ट हो गे। अतः राष्ट्रीय सभा के बहुमत को अपना विरोधी पाकर थीयर्स ने 24 मई 1873 ईव को पदत्याग दिया। राष्ट्रीय सभा ने उसके स्थान पर मार्शल मैकमहोन को राष्ट्रपति नियुक्त किया।

3.4. मैकमहोन का शासनकाल तथा तृतीय गणतन्त्र का संविधान

मार्शल मैकमहोन घोर राजतंत्र वादी था। वह फ्रांस में पुनः राजततंत्र की स्थापना करना चाहता था किन्तु राजतंत्रवादियों के आपसी झगड़ो के कारण वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। क्योकि परिस्थितियाँ ऐसी बनी कि मैकमहोन को उग्रगणतंत्रवादियों की मांग स्वीकार करते हुए 1874 ईव में उपचुनाव कराने हुते विवश होना पड़ा। उपचुनाव में गणतंत्रवादियों को भारी सफलता मिली। फ्रांस की अदिकांश जनता गणतंत्र व्यवस्था की स्थापना और एक स्थायी संविधान का निर्माण चाहती थी। अतः गणतंत्रवाद के बढ़ते प्रभाव एवं जनता की मनोभावना को समझते हुए, मैकमहोन सरकार ने 'शासकीय शक्तियों पर विचार एवं योजना निर्माण करने के लिए एक 30 सदस्यीय आयोगद की नियुक्ति की। इस आयोग ने जन 1875 ईव में एक रिपोर्ट राष्ट्रीय सभा के समझ प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के आधार पर फ्रांस के नवीन संविधान की रूपरेखा पर राष्ट्रीय सभा में विचार विमर्श हुआ और अन्त में राष्ट्रीय सभा ने मात्र एक के बहुमत से फ्रांस में तृतीय गणतंत्र की स्थापना की घोषणा कर दी। इसी के साथ 1875 ईव फ्रांस का नवीन संविधान लागू हो गया।

नवीन संविधान की रूपरेखा — 1875 ईव के संविधान द्वारा फ्रांस में द्विसदनात्मक विधानमण्डल राष्ट्रीय सभा की स्थापना की गई। उच्च सदन को सीनेट एवं निम्नसदन को चौम्बर ऑफ डिपुटीज कहा गया। सीनेट के सदस्यों की संख्या 300 थी। जिसमें 75 सदस्यों को आजीवन सदस्यता दी गयी, शेष 225 सदस्यों का चुनाव निर्वाचक मण्डलो द्वारा 9 वर्ष के ले किया जाना था। सीनेट के एक तिहाई सदस्यों को प्रति चौथे वर्ष अवकाश प्राप्त करने की व्यवस्था की गई प्रतिनिदी सभा (चौम्बर ऑफ डिपुटीज) के सदस्यों की संख्या 610 थी। प्रत्येक सदस्य को पुरूष वयस्क मतताधिकार द्वारा 4 वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाना था। बहुमत दल का नेता प्रधानमंत्री होता था, वही अपने मन्त्रिमण्डल का निर्माण करता था, और चौम्बर ऑफ डिपुरीज के प्रतति उत्तरदायी था।

नवीन संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति का चुनाव 7 वर्ष के लिए किए जाने की व्यवस्था की गई। राष्ट्रपति का निर्वाचन सीनेट और चौम्बर ऑफ डिपुटीज अर्थात राष्ट्रीय सभा के दोनो सदनो द्वारा किया जाता था। राष्ट्रपति को संसद में बिल प्रस्तुत करने, चौम्बर ऑफ डिपुटीज को भंग करने, अपराधियों को क्षमा दान, सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति करने तथा जल एवं स्थल सेना को निर्देश देने का अधिकार प्राप्त था। वस्तुतः राष्ट्रपति अनुत्तरदायी था। क्योकि उसके प्रत्येक आदेस पर किसी मंत्री के हस्ताक्षर अनिवार्य था और उस आदेश के लिए मंत्री ही उत्तरदायी होता था। शासन की सम्पूर्ण सत्ता वस्तुतः मंत्रीमण्डल के हाथ में थी।

नवीन संविधान में 'गणतंत्र' शब्द का प्रयोग कही नही किया गया था। बाद में गणतंत्र समर्थक सदस्य बेलान ने एक संशोदन द्वारा संविधान 'गणतंत्र' शब्द का समावेश किया। फ्रांस का यह गणतन्त्रीय संविधान वास्तव में राजतन्त्रवादी और गणतंत्रवादी विचारधारा के बीच एक समझौता था। जिसमें फ्रांस के ऐतिहासिक

विकास के विभिन्न स्वरूपों को ध्यान में रखा गया। यद्यपि अधिकांश लोगो का मानना था कि यह संविधान अधिक समय तक नही चल सकेगा। किन्तु यह संविधान दीर्घजीवित सिद्ध हुआ और एक दो साधारण परिवर्तन के साथ 1946 ईव तक चला। यद्यपि नवीन संविधान के फ्रांस में सीमित गणतंत्र की स्थापना की, लेकिन राजतंत्रवादियों को इस बात की प्रसन्नता थी कि सीनेट में उसका बहुमत रहेगा और राष्ट्रपति एवं सीनेट मिलकर प्रतिनिधि बनाए रखेंगे। इस संविधान की प्रशंसा करते हुए हेजन ने लिखा है "1875 ईव का फ्रांस संविधान इग्लैण्ड अथवा अमेरिका के संविधान की तुलना में अधिक प्रजातान्त्रिक था""

गणतंत्र को सुदृढ़ करने का प्रयास — मई 1877 ईव में मैकमहोन ने गणतंत्रवादी मन्त्रिमण्डल को भंगकर राजतन्त्रवादी ब्रोग्ली को प्रधानमंत्री नियुक्त किया किन्तु जनता ने नवीन चुनाव की मांग की। अतः नवीन चुनाव कराए गए, इस चुनाव में भी गणतंत्रवादियों को बहुमत प्राप्त हुआ। मैकमहोन को पनः गणतंत्रवादी मन्त्रिमण्डल का निर्माण करना पड़ा। 1878 ईव में सीनेट के एक तिहाई सदस्यों का चुनाव हुआ। जिसमें गणतंत्रवादियों को भारी सफलता मिली। इस प्रकार दोनों सदनो में गणतन्त्रवादियों का बहुमत हो गया। गणतन्त्रवादियों ने सेना में उन अधिकारियों को हटाने की माँग की, जो गणतंत्र के विरोधी थे। मैकमहोन ने यह मांग ठुकरा दी। अन्ततः गणतंत्रवादियों को विरोध को देखते हुए 30 जनवरी 1879 ईव को मैकमहोन ने राष्ट्रपति पद से त्यागपत्र दे दिया। अतः दोनो सदनो ने मिलकर गणतन्त्रवादी नेता जूल्स ग्रेवी को अपना राष्ट्रपति चुना। इस प्रकार गणतंत्र समाप्ति का प्रयास असफल हो गया। नवीन राष्ट्रपति जूल्स ग्रेवी के शासन काल में गणतंत्रवादी सरकार ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के निम्नलिखित सुधार कार्य किए—

1. 1880 ईव में वार्साय के स्थान पर पेरिस को पुनः राजधानी घोषित किया गया। इस वर्ष 14 जुलाई (वास्तील के पतन का दिवस) को राष्ट्रीय पर्व घोषित किया गया।

2. गैम्ब्रेटा के प्रयत्नो से सभी कम्युनार्डो को क्षमा दे दी गई। जिससे गणतंत्रवादियो को लोकप्रियता बढ़ी।

3. 1881 ईव में नागरिकों को भाषण, लेखन एवं मुद्रण की स्वतंत्रता दी गई। मजदूरो के विरूद्ध बनाए गए कानून रद्द कर दिये गए और 1884 ईव में श्रमिक संगठन बनाने की अनुमति दे दी गई।

4. 1883 ईव में एक कानून द्वारा उन परिवारों के सदस्यों को जो किसी समय फ्रांस में शासन कर चुके थे, राष्ट्रपति पद के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया। एक अन्य कानून द्वारा आजीवन सदस्यता की व्यवस्था समाप्त कर दी गई। यह भी घोषणा की गई कि संविधान के गणतंत्र स्वरूप को कभी नही बदला जाएगा।

5. 1884 ईव में पेरिस को छोड़कर फ्रांस के सभी कम्प्यूनों में अपना मेयर चुनने की स्वतंत्रता दी गई।

6. शिक्षामंत्री जूल्स फेरी के प्रयासो से 1881 ईव में एक कानून द्वारा निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की। अगले वर्ष 6—13 वर्ष आयु वर्ग के बच्चो के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। स्कूलों में धार्मिक शिक्षा बन्द कर दी गई। अब चर्च से सम्बन्धित व्यक्ति शिक्षक नही हो सकता था। शिक्षकों की नियुक्ति सरकार द्वारा किए जाने की व्यवस्था की गई।

7. चर्च की निरंकुशता का दमनकर दिया गया और जेसुइट्स को देश से निष्कासित कर दिया गया।

8. अनेक लोकनिर्माण के कार्य किय गए। अनेको बन्दरगाहों, भवनों व सड़कों का निर्माण, तथा औद्योगिक विकास के लिए रेलवे का विस्तार किया गया।

इन सभी सुधार कार्यो से तृतीय गणतंत्र की स्थिति काफी सुदृढ़ हुई।

3.5. फ्रांसीसी गणतंत्र पर संकट

1882 ईव में प्रमुख गणतान्त्रिक नेता गेम्ब्रेटा की मृत्यु हो गई। 1885 ईव में जूल्स फेरी के मन्त्रिमण्डल के पतन के उपरान्त गणतन्त्रवादी दल में कोई सुयोग्य नेता नही रहा। अतः गणतंत्रवादी दो दलों में विभाजित हो गए। 1. अवसरवादी 2. उग्रगणतंत्रवादी। इन दोनो पक्षों के बीच मतभेद बढ़ जाने से 1885 ईव के चुनाव में राजतन्त्रवादीयों की स्थिति में तेजी से सुधार हुआ। फ्रांस की बिगड़ती आर्थिक स्थिति ने भी गणतंत्र के लिए संकट पैदा कर दिया। गणतंत्रवादियों की आपसी फूट के कारण मंत्रिमण्डलो का पतन जल्दी–जल्दी होने लगा, अतः राजतंत्रवादियों का प्रभाव काफी बढ़ गया। 1887 ईव में राष्ट्रपति ग्रेवी को अपने दामाद डेनियल के अवैध धन एकत्र करने के कारण बदनाम होकर पदत्याग करना पड़ा। अब सादीकार्नों राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ और तभई बुर्रेंजिस्ट आन्दोलन के रूप में नवीन संकट उत्पन्न हुआ। तृतीय गणतंत्र को निम्नलिखित चार संकटो का सामना करना पड़ा।

1. **बूलैंजिस्ट आन्दोलन** – 1886 ईव में युद्ध मंत्री जनरल बूलांजे का निरंकुश शासन स्थापित करने हेतु एक आन्दोलन चलाया गया। अतः इसे बूलैंजिस्ट आन्दोलन कहा जाता है। बूलांजे ने फ्रांस के लिए अनेक युद्धो में भाग लिया था। वह 1870 ईव की पराजय का प्रतिशोध जर्मनी से लेना चाहता था। अतः युद्धमंत्री बनने पर उसने सेना को शक्तिशाली बनाया, सैनिको के वेतन में वृद्धि कर दी और सैनिको के निवास की व्यवस्था की। इन सुधारों के पश्चात बलाजें काफी लोकप्रिय हो गया। बूलाजे ने समाचार पत्रो के माध्यम से अपने विचारो को सम्पूर्ण फ्रांस में प्रसारित करवाया। उसने अपने विचारो से फ्रांसीसी जनता को भी प्रभावित किया। शीघ्र ही बूलाजे को कैथोलिको बोनापार्टिस्ट एवं समाजवादियों का भी समर्थन मिलने लगा। बूलांजे की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वह प्रतिनिधि सभा के लिए पांच माह में 6 निर्वाचन क्षेत्रो से निर्वाचित हुआ था। 1889 ईव में पेरिस से भी वह भारी बहुमत से विजयी हुआ था। पेरिस में हजारो लोगो की भीड़ ने बूलांजे की जयघोष किया। यदि वह इस विजय से समय गणतंत्र पर आक्रमण कर देता तो निश्चित रूप से गणतंत्र का पतन हो जाता और वह तानाशाही सत्ता की स्थापना कर लेता किन्तु बुलांजे ने इस सुअवसर को खो दिया। जेम्स ने लिखा है– "यदि उसकी वृद्धि व साहस ने उसकी अभिलाषा का शाथ दिया होता तथा यदि उसे राजनीतिक समय की सही पहचान होती तो वह सफल हो सकता था।"

बूलांजे की लोकप्रियता एवं महत्वाकांक्षी को देखकर गणतंत्रवादियों में भय फैल गया और वे आपसी मतभेद भुलाकर एकजुट हो गए और तुरन्त संसद का अधिवेशन बुलाया। संसद में बुलांजे पर देश की सुरक्षा को खतरे में डालने का आरोप लगाते हुए आदेश किया गया कि वह संसद के सामने उपस्थित हो किन्तु बूलांजे देश छोड़कर बेल्जियम भाग गया। उसकी अनुपस्थिति में संसद में महाभियोग चलाकर आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया। 1891 ईव में बूलांजे

ने बेल्जियम में आत्महत्या कर ली। इसी के साथ बूलांजे द्वारा उत्पन्न संकट का अंत हो गया।

2. **ड्रेफस काण्ड –** तृतीय गणतंत्र के समक्ष दूसरा संकट 1894 ईव का ड्रेफस काण्ड था। जिसने फ्रांस की सरकार की नीव हिला दी। एल्फ्रेस ड्रेफस एक यहुदी था। जो सेना में कैप्टन के पद पर कार्यरत था। अक्टूबर 1894 ईव में उसे राजद्रोह के आरोप में बन्दी बना लिया गया। उउस पर आरोप लगाया गया था कि वह अपने देश के सैनिक गुप्त कागज शत्रु को देता था। उसके ऊपर मुगदमा चला। मुकदमें में प्रमाण के रूप में कुछ कागजो को प्रस्तुत किया गया था, जिस पर किसी के हस्ताक्षर नही थे। अदालत ने उसे दोषी ठहराया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई। ड्रेफस स्वयं को निर्दोष कहता रहा, किन्तु उसकी बातों पर कोई ध्यान नही दिया गया। उसे सैनिक स्कूल के खुले आंगन में बेइज्जत किया गया और उसकी वर्दी फाड़ दी गई। तत्पश्चात उसे दक्षिणी अमेरिका के एक उजाड़ द्वीप डेविल्स आइलैण्ड को निर्वासित कर दिया गया।

1896 ईव में फ्रांसीसी सेना के गुप्तचर विभाग के अध्यक्ष कर्नल पिक्वार्ट ने घोषणा की कि ड्रेफस निर्दोष था। क्योंकि जिन कागजों के साक्ष्य पर उसे दोषी ठहराया गया था, उसे ड्रेफस ने नही अपितत मेजर एस्टरहैजी ने तैयार किया था। फ्रांस की सरकार ने सेना की प्रतिष्ठा को बचाने के उद्देस्य से मामले को दबाना चाहा तता कर्नल पिक्वार्ट को स्थानान्तरित कर कर्नल हेनरी को उसके स्थान पर नियुक्त किया। धीरे–धीरे ड्रेफस काण्ड तूल पकड़ने लगा क्योकि फ्रांसीसी जनता उसमें रूचि ले रही थी। इसी समय उपन्यासकार एमर्ली जोला ने राष्ट्रपति के नाम एक खुला पत्र लिखा, जिसमें उसने ड्रेफस को निद्रोष बताया। सरकार ने एमली जोला को भी बन्दी बनाने का प्रयास किया किन्तु वह इग्लैण्ड भाग गया। 1898 ईव में मेजर ऐस्टरहौजी पर दिखावा मात्र के लिए मुकदमा चलाया गया और उसे निर्दोष घोषित किया गया।

किन्तु 1899 ईव में घटनाचक्र पुनः ड्रेफस के पक्ष में घुमने लगा। गुप्तचल विभाग के अध्यक्ष हेनरी ने यह स्वीकार कर लिया कि उउसी ने एक जाली ततेख तैयार किया था। स्थिति बिगड़ते देखकर कर्नल हेनरी ने आत्म हत्या कर ली। बाद में मेजर एस्टरहैजी ने भी यह स्वीकार कर लिया कि उसी ने कुचक रचा था। एस्टरहैजी दण्ड के भय से फ्रांस छोड़कर लन्दन भाग गया। इन घटनाचक्रो से जनमत इस पक्ष में झुकने लगा कि ड्रेफस मामले की पुनः सुनवाई की जाय।

1899 ईव में ड्रेफस मामले की पुनः सुनवाई सैनिक न्यायालय में शुरू हुई किन्तु सैनिक न्यायालय ने ड्रेफस को ही दोषी माना, किन्तु उसकी सजा घटाकर 10 वर्ष कर दी। इसके उपरान्त राष्ट्रपति लूबे ने ड्रेफस को क्षमादान देकर उसे मुक्त करने का आदेश दे दिया किन्तु ड्रेफस के मित्रो ने लूबे के निर्णय पर असन्तोतष व्यक्त किया और मांक की कि ड्रेफस को निर्दोष घोषित किया जाय। 1906 ईव में सर्वोच्च न्यायालय में ड्रेफस मामले पर पुर्नविचार किया गया। न्यायालय ने ड्रेफस को निर्दोष घोषित किया। ड्रेफस को पुनः सेना में सम्मानपूर्वक मेजर पद दिया गया और उसे सैनिक सम्मान से विभूषित किया गया। कर्नल पिक्वार्ट को भी ब्रिगेडियर जनरल बनाया गया। बाद में वह फ्रांस का युद्धमंत्री भी बना। इस प्रकार ड्रेफस काण्ड से सैन्यवाद को गहरा धक्का लगा। ड्रेफस के निर्दोष सिद्ध होने से गणतंत्र विरोधी तत्व बदनाम हो गए और उन्हें मुंह की कानी पड़ी। ड्रेफस काण्ड से सेना के प्रभाव में कमी हुई और गणतंत्र की स्थिति सुदृढ़ हुई।

3. **चर्च से संघर्ष –** ड्रेफस काण्ड के पश्चात ही फ्रांसीसी गणतंत्र और चर्च के बीच सघर्ष तीव्र हो गया। विख्यात गणतंत्रवादी नेता गैम्ब्रेटा ने 1878 ई□व में कहा था कि पादरीवाद गणतंत्र का शत्रु है। बूलेजिस्ट तथा ड्रेफस संकट के अवसरों पर चर्च ने तृतीय गणतंत्र को बदनाम करने का प्रयास किया। फ्रांस के कैथोलिक पादरी राजतंत्रवादियों के समर्थक थे। अपनी पाठशालाओ एवं उपदेशों में वे गणतंत्र के सिद्धान्तों की आलोचना करते थे। चर्च अपने धार्मिक प्रभाव एवं अपार सम्पन्ति के आधार पर गणतंत्र का विरोध करने में सक्षम था।

गणतंत्रवादी पोप एवं चर्च के बढ़ते प्रभाव से चिन्तित थे। उग्रगणतंत्रवादियों का विश्वास था कि सरकार के फ्रेंच कैथोलिक पर प्रभावी अंकुश रखना चाहियें। इन परिस्थितियों में वाल्डेक रूसों मंत्रिमण्डल (1899–1902) एवं प्रधानमंत्री कोम्बस ने गणतंत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए चर्च की शक्ति एवं अधिकारों पर कानूनी प्रतिबन्ध लगाने का निश्चय किया और निम्नलिखित कदम उठाएदृ

1. 1900 ईवव में एजम्पशनिस्ट कैथोलिक संघ को अवैध घोषित कर दिया गया।
2. 1901 ईव में 'ला ऑफ एसोसिएशन्स' पारित किया गया, जिसके अनुसार कैथोलिक को धार्मिक संघ स्थापित करने की स्वतंत्रता दी गई। लेकिन यह घोषणा कर दी गई कि कोई भी संस्था चाहे वह धार्मिक हो या राजनीतिक उसे सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक होगा। इस कानून के बनने से चर्च की धार्मिक शिक्षण संस्थाए बन्द हो गई। उनकी सम्पत्ति एवं मठ जब्त कर लिए गए।
3. शिक्षा पर से चर्च प्रभाव को समाप्त करने के लिए सरकारी स्कूलों की स्थापना की गई।
4. सभी धर्माचार्यो को अपने पद का प्रमाणपत्र सरकार से लेना अनिवार्य कर दिया गया।
5. विवाह अथवा तलाक की आज्ञा धर्माचार्यो के स्थान पर न्यायालयों से लेना अनिवार्य कर दिया गया।
6. 1903 ईवव में धार्मिक अनुदान बन्द कर दिया गया।
7. 1905 ईवव के पृथक्ककरण का कानून पारिस करके चर्च एं राज्य के सम्बन्ध को समाप्त कर दिया गया। सरकार द्वारा अब किसी भी धर्म को संरक्षण नही दिया जाना था।
8. 1905 ईवव में ही नेपोलियन एवं पोप के बीच हुए समझौते को समाप्त कर दिया गया।

गणतंत्र सरकार की कठोर चर्च विरोधी नीति के कारण गणतंत्र एवं पोप के सम्बन्ध खराब हो गए। पोप पायस दशम् ने सरकार के इन कार्यो को आलोचना की। उसका विचार था कि चर्च और राज्य के पृथक नही किया जा सकता किन्तु फ्रांस की सरकार ने राज्य को लौकिकक राज्य बनाने हेतु संघर्ष किया। फ्रेंच राष्ट्रपति ने रोमयात्रा की, तब पोप ने इसका विरोध किया और कहा कि उसकी स्वीकृति के बिना किसी राष्ट्राध्यक्ष का इटली जाना पोप का मान भंग करना है। जब पोप ने फ्रांस के दो विशपो को जो गणतंत्र के समर्थक थे। अपने पास बुलाकर अनुचित आचरण का आरोप लगाया। इस घटना से गणतंत्रीय सरकार एवं पोप के बीच तनाव काफी बढ़ गया और फ्रेंच सरकार ने पोप से राजनीतिक

सम्बन्ध तोड़ लिया। 1905 ईवव में सरकार ने पार्थक्य एक्ट पारित किया। इस कानून द्वारा राज्य को चर्च से अलग कर दिया गया तथा राज्य ने जनता को धार्मिक स्वतंन्त्रता प्रदान कर दी। यह व्यवस्था की गई की पूजा स्थलों के प्रयोग पर कोई प्रतबन्ध नही होगा किन्तुत चर्च भवनी पर सार्वजनिक स्वामित्व अक्षुण्य रहेगा। फ्रांस के इतिहास में चर्च एवं राज्य के संघर्ष के महत्वपूर्ण परिणाम निकाले। इसके फलस्वरूप फ्रांस का राज्य पूर्णतः लौकिक राज्य बन गया तथा चर्च राज्य का पृथक्करण पूर्ण हो गया। तृतीय गणतंत्र ने राज् धर्म की सरकारी मान्यता की यूरोपीय परम्परा का अन्त कर दिया। शेपिरो ने लिखा है कि "इससे प्रजा को धार्मिक स्वतंत्रता मिल गई और राज्य को राजनीतिक स्वतंत्रता।"

4. **पनामा कैनाल काण्ड** – 1888 ई0 में फ्रांस की गणतंत्र सरकार को एक अन्य समस्या का सामना करना पड़ा। जिसे पनामा नहर कम्पनी काण्ड के नाम से जाना जाता है। 1879 ईवव में पनामा नगर कम्पनी की स्थापना की गई और नहर बनाने का कार्य फ्रेंच इंजिनियर डीलेसेप को सौपा गया। कम्पनी में शेयर धारको के करोड़ो फ्रांक लगे हुए थे। 1888 ईवव में कम्पनी दिवालिया हो गई। अतः कम्पनी के हिस्सेदारों ने सरकार से जांच कराने और संचालको को दण्ड देने की मांग की। जांच कराने पर पता चला कि करोड़ो पैण्ड धनराशि की हेराफेरी की गई। इस गबन में अनेक मंत्रियो एवं सांसदो का भी हाथ पाया गया। इससे गणतंत्र सरकार की काफी बदनामी हुई। सरकार ने दोषी मंत्रियो एवं सांसदो पर मुकदमें चलाए। जिनमें से अधिकांश आरोपी साक्ष्य के अभाव में छोड़ दिये गए। पनामा काण्ड के कारण कुछ प्रमुख नेताओ का राजनीतिक जीवन समाप्त हो गया।

3.6. विदेश नीति

1871 ईवव के उपरान्त फ्रांस की विदेशनीति का मुख्य उद्देश्य यूरोप महाद्वीप में फ्रांस की महत्ता को पुर्नस्थापित करना था। विस्मार्क ने अफनी कूटनीति द्वारा फ्रांस को एकाकी बना दिया। फ्रांस की जनता अल्सास व लारेन प्रांत जर्मनी से वापस लेने हेतु आतुर थी। अल्सास लारेन की क्षति ने उस राष्ट्रीय उन्माद को जन्म दिया, जो निरंतर फ्रेच जनता के ह्दय में ज्वाला बनकर धधकती रही। परन्तु अकेला फ्रांस जर्मनी से बदला नही ले सकता था। इसके लिए उसे मित्र की आवश्यकता थी। विस्मार्क की कूटनीति के कारण 1890 ईवव तक फ्रांस को कोई मित्र नही मिल सका, किन्तु फ्रांस को कुछ देशों की सहानुभूति अवश्य प्राप्त होती रही। जब 1875 ईवव में जर्मनी से युद्ध का खतरा उत्पन्न हो गया, तब रूस के जार एं इग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने बीच बचाव करके फ्रांस की रक्षा की लेकिन 1890 ईवव में जर्मन चांसलर विस्मार्क को पद त्याग के बाद स्थिति में परिवर्तन हुआ और उसने यूरोप में अपने मित्र खोजना शुरू कर दिया।

1. **रूस के साथ मैत्री सन्धि(1893)** – यूरोप के शक्तिशाली देशो में केवल रूस ऐसा राष्ट्र था। जिससे फ्रांस की मैत्री अधिक सुगम थी। क्योंकि पूर्वी समस्या के प्रश्न पर आस्ट्रिया से रूस की कटुता थी। और आस्ट्रिया जर्मनी का मित्र था। प्रारम्भ में विस्मार्क रूस को फ्रांस से अलग थलग रखने में सफल रहा किन्तु बाद में जार एलेक्जेण्डर ष्ष् में विस्मार्क की मैत्री में सन्देह होने लगा और उसका झुकाव फ्रांस की ओर होने लगा। जब अप्रैल 1887 ईवव में अल्सास के सीमान्त में जर्मन अधिकारियों ने अपमानपूर्ण ढंग से फ्रेंच पुलिस कमिश्नर श्नीबेल को बंदी बना लियाय अतः फ्रांस में उत्तेजना फैल गई। तब जार एलेक्जेण्डर ष्ष् ने कैसर विलियम को पत्र लिखकर स्पष्ट किया था कि यदि फ्रांस व जर्मनी में युद्ध छिड़ा

तो 1884 ईवव की सन्धि के अनुसार रूस तटस्थ नही रह सकेगा। इस पत्र को पाने के पश्चात कैसर विलियम ने श्नीबेल को तुरन्त मुक्त कर दिया। बूलांजे संकट के समय भी रूस की सहानुभूति फ्रांस से बनी रही।

1888 एवं 1891 ईवव में आर्थिक संकट के समय फ्रांस ने रूस को भारी ऋण दिया। इस सहायता से रूस के जार का मठ फ्रांस के प्रति अनुकूल हो गया। 1891 ईवव में फ्रेंच जहाजी बेड़े ने कान्सटेंट की सद्भावना यात्रा की, तब उसका भव्य स्वागत हुआ। अतः दोनो देशो के बीच मैत्री के वातावरण तैयार हो गए और 1893 ईवव में रूस व फ्रांस के बीच मैत्री सन्धि हो गई। इस सन्धि द्वारा यह निश्चित किया गया। कि दोनो मित्र देशो में से किसी एक के विरूद्ध त्रिगुट सदस्य देश ने आक्रमण किया तो दोनो मित्र एक दूसरे की सहायता करेंगे। इस सन्धि के पश्चात फ्रांस का एकाकीपन मिट गया।

इटली के साथ सम्बन्ध – प्रारम्भ में फ्रांस व इटली के बीच सम्बन्ध मधुर थे। किन्तु 1878 ईवव के बाद अफ्रीका में ट्यनिस पर अधिकार को लेकर दोनो के सम्बनध कटु हो गए। बिस्मार्क की कूटनीति यह थी कि इटली और फ्रांस में शत्रुता बनी रहे अतः 1878 ईवव में बिस्मार्क ने इटली को ट्यूनिस पर अधिकार करने हेतु प्रोत्साहित किया किन्तु फ्रांस के भय से इटली कोई कदम नही उठा सका। इटली की आशंका को देखकर बिस्मार्क ने फ्रांस को ट्यूनिस पर अधिकार के लिए प्रेरित किया, अतः फ्रांस ने 1881 ईवव में ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया। इससे इटली नाराज हो गया और उसने फ्रांस के विरूद्ध जर्मनी व आस्ट्रिया से सन्धि कर ली।

इग्लैण्ड के साथ हार्दिक मैत्री सन्धि (1904 ई0) – फ्रांस व इग्लैण्ड औपनिवेशक विस्तार के आकांक्षी थे। अतः दोनो में प्रतिस्पर्धा होना स्वाभाविक था। दोनो देशो में मिश्र के स्वेज ननहर एवं मध्य अफ्रीका में प्रभाव स्थापना को लेकर परस्पर विरोध थी। 1898 ईवव में फशोदा की घटना को लेकर दोनो देशो के बीच युद्ध की आशंका बढ़ गई। मिश्र में फशोदा नामक स्थान पर ब्रिटिश सेनापति किचनर और फ्रेच सेनापति मांशा में सामना हो गया। किन्तु फ्रेंच प्रधान सेनापति देलकाजे ने पशोदा से फ्रेंच सेना को हटाकर स्थिति सभांल ली। दोनो देशो के बीच वार्ताचली और 1899 ईवव में फ्रांस ने फशोदा पर अंग्रेजो का अधिकार स्वीकार कर लिया, बदलें में इग्लैण्ड ने सहारा की ओर फ्रांस को विस्तार का अधिकार दे दिया।

जर्मनी की बढ़ती हुई सैनिक शक्ति से फ्रांस व इग्लैण्ड निकट आने लगे। अन्त में फ्रांस के विदेशमंत्री देलकाजे के प्रयासो और सम्राट एडवर्ड सप्तम की बुद्धिमता के कारण 8 अप्रैल 1904 ईवव को दोनो देशो के बीच मैत्री सन्धि हो गई। इसे हार्दिक मैत्री सन्धि भी कहा जाता है। इस सन्धि द्वारा फ्रांस ने मिश्र में ब्रिटेन के अधिकार को मान लिया और बदले में इग्लैण्ड ने मोरक्को में फ्रांस के प्रभाव को मान्यता दे दी। वास्तव में फ्रांस व इग्लैण्ड के बीच यह मैत्री सन्धि जर्मनी के विरूद्ध एक बड़ी कूटनीति सफलता थी। आगे चलकर 1907 ईवव में रूस भी इस सन्धि में शामिल हो गया। इस प्रकार जर्मनी के त्रिगुट के विरूद्ध फ्रांस, इग्लैण्ड व रूस का दूसरा त्रिगुट बन गया। यह फ्रांस के तृतीय गणतंत्र की विदेश नीति की महानतम् सफलता थी।

3.7. सारांश

फ्रांस–प्रशा युद्ध के पश्चात 4 सितम्बर 1870 ईवव को पेरिस में तृतीय गणतंत्र की स्थापना हुई और अस्थायी गणतंत्र की सरकार को 1871 ईवव में

भीषण गृहयुद्ध का सामना करना पड़ा किन्तु थीयर्स सराकर ने सैन्य शक्ति के बल पर पेरिस कम्यून विद्रोह का दमन कर दिया। तत्पश्चात थीयर्स सरकार ने राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण के लिए सैनिक आर्थिक स्थानीय स्वशासन एवं विधान के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण सुधार किए। तथा 1875 ईवव में नवीन संविधान का निर्माण किया गया। 1882 ईवव में गणतंत्रवादी नेता ग्रेम्ब्रेटा की मृत्यु के बाद दल में फूट पड़ गई। तब तृतीय गणतंत्र के सम्मुख 4 संकट यथा बूलैजिस्ट आन्दोलन, ड्रेफस काण्ड, चर्च से संघर्ष, पनामा कैनाल काण्ड उत्पन्न हुए। किन्तु सरकार ने इन संकटो का सफलतापूर्वक समाधान कर दिया और तृतीय गणतंत्र स्थायी बना रहा। 1871 ईवव के उपरान्त फ्रांस की विदेश नीति के क्षेत्र में फ्रांस की महत्ता पुर्नस्थापित करने की गणतंत्र के सामने प्रमुख चुनौती थी। तृतीय गणतंत्र की सरकार ने बिस्मार्क की कूटनीति का कुशलतापूर्वक सामना किया और बिस्मार्क के पदत्याग के बाद रूस के साथ मैत्री सन्धि (1893 ईवव) एवं इग्लैण्ड के साथ हार्दिक मैत्री सन्धि (1904 ईवव) जर्मनी के विरूद्ध महत्वपूर्ण कूटनीतिक सफलताएं अर्जित की।

3.8 बोध प्रश्न

1. पेरिस कम्यून के विद्रोह के कारण एवं परिणाम का वर्णन कीजिए।
2. फ्रांस में तृतीय गणतंत्र की समस्याओ का वर्णन कीजिए तथा उसकी उपलब्धियो का मूल्यांकन कीजिए।
3. राष्ट्रीय पुर्न निर्माण के क्षेत्र में थीयर्स सरकार द्वारा किए गए सुधार कार्यो पर प्रकाश डालिए।
4. बूलैजिस्ट आन्दोलन पर एक संक्षिप्त लेखा लिखिए।
5. तृतीय गणतंत्र के काल में चर्च एवं राज्य के बीच संघर्ष का वर्णन कीजिए।
6. तृतीय गणतंत्र की विदेश नीति का वर्णन कीजिए।

इकाई – 4 नव इटली

इकाई की रूपरेखा

4.0. उद्देश्य

4.1. प्रस्तावना

4.2. नव इटली की गृहनीति

4.3. राष्ट्रीय एकती की स्थापना हेतु प्रयास एवं सुधार कार्य

4.4. पोप एवं राज्य के बीच मतभेद की समस्या का समाधान

4.5. आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के प्रयास

4.6. समाजवाद का प्रभाव एवं श्रमिक सुधार के प्रयास

4.7. इटली की विदेश नीति

4.8. सारांश

4.9. बोध प्रश्न

4.0. उद्देश्य

- ❖ इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि–
- ❖ नव इटली साम्राज्य की गृहनीति क्या थी।
- ❖ इटली में संवैधानिक एकतंत्र शासन सत्ता का स्वरूप कैसा था।
- ❖ इटली की राष्ट्रीय एकता के लिए क्या प्रयास किए गए।
- ❖ पोप और राष्ट्र के बीच मतभेद की समस्या का कैसे हल निकाला गया।
- ❖ इटली की विदेशनीति के क्षेत्र में क्या कार्य किए गए।

4.1 प्रस्तावना

सन् 1870 ईवअरफअव में इटली के राष्ट्रीय एकीकरण का महान कार्य सम्पन्न हुआ और छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त प्रांतों को मिलाकर एक नवीन इटली राष्ट्र बना। स्वतंत्र इटली को आन्तरिक क्षेत्र में कई समस्याओं यथा राष्ट्रीयता की भावना का अभाव, परोप की समस्या, आर्थिक संकट, जनसंख्यावृद्धि, समाजवाद, निर्धनता आदि का सामना करना पड़ा। इटली के राष्ट्रवादी नेताओं ने अपनी आन्तरिक समस्याओं को सुलझाने के साथ ही इटली के औपनिवेशिक विस्तार एवं एक महाशक्ति बनने की लालसा को पूर्ण करने हेतु प्रभावशाली विदेश नीति अपनाई। जब 1914 ईवअरफअव में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ, तब प्रारम्भ में इटली तटस्थ रहा। किन्तु बाद में मित्रदेशों की ओर से महायुद्ध में भाग लिया।

4.2 इटली की गृहनीति

नव स्वतंत्र इटली को आन्तरिक क्षेत्र में अनेक समस्याओ का सामना करना पड़ा। किन्तु सभी आन्तरिक समस्याओं का सफलतापूर्वक समाधान निकाला गया तथा निम्नलिखित कार्य किए गए।

संवैधानिक एकतंत्र की स्थापना – नवीन इटली की रचना पीडमाण्ट दृ सार्डीनिया के नेतृत्व में प्रजातांत्रिक ढंग से हुई थी। उसका निर्माता कावूर हृदय से प्रजातांत्रिक था और उसने प्रत्येक कदम जनमत के बल पर उठाया। सम्राजट विक्टर इमैनुअल प्प स्वयं एक संवैधानिक राज्य का संवैधानिक राजा था और 1871 ईवव में संयुक्त इटली का सम्राट बनने पर भी वह उसी रूप में बना रहा।

संयुक्त इटली का संविधान भी इग्लैण्ड के संविधान की भांति संसदीय था। संविधान के अन्तर्गत दो सदनात्मक विधानमण्डल की व्यवस्था की गई थी। सीनेट उच्च सदन था। जिसके सदस्यो को राजा द्वारा मनोनीत किया जाता था। निम्न सदन प्रतिनिधी सभा के सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा किये जाने की व्यवस्ता थी। जिसका कार्यकाल पाँच वर्ष के लिये होता था। मतदान का अधिकार सम्पत्तिवान एवं शिक्षित वर्ग को ही प्राप्त थी। इटली का सम्राट शासन का सर्वोच्च प्रशासक होता था। देश की शासन व्यवस्था के संचालन के लिए सम्राट द्वारा एक मंत्रिमण्डल की नियुक्ति की जाती थी। विधामण्डल दोनो सम्राट के प्रति उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार इटली का सम्राट संवैधानिक एकतंत्र शासक का अध्यक्ष था।

4.3. राष्ट्रीय एकता स्थापना हेतु प्रयास एवं सुधार कार्य

इटली में राष्ट्रीय एकता का अभाव था। उत्तरी और दक्षिणी इटली में अनेक विभिन्नताएं थी। उत्तरी इटली में औद्योगिक एवं आर्थिक विकास थोड़ा बहुत हो चुका था किन्तु दक्षिणी इटली में बिल्कुल नही हुआ था। 1870 ईवव के पूर्व इटली के जो प्रान्त आपस में लड़ते थे, वे एकीकरण के बाद राजनीतिक दलों के रूप में प्रकट हुए। नवनिर्मित इटली की सरकार के सामने यह निकट समस्या थी कि देश के विभिन्न प्रदेशो में राजनीतिक एकता एवं आर्थिक सुदृढ़ता कैसे लाई जाए। इटली की सरकार ने इन समस्याओ के हल के लिए निम्नलिखित सुधार कार्य किए।

1. इटली के विभिन्न प्रान्तो में प्रचलित अलग–अलग शासन पद्धतियों को समाप्त करके सम्पूर्ण देश में एक समान केन्द्रीयकृत शासन प्रणाली लागू की गई और सभी राज्यों को केन्द्रीय शासन सत्ता के अधीन किया गया।
2. पीडमान्ट की शासन व्यवस्था एवं न्याय व्यवस्था को आदर्श मानकर सम्पूर्ण देश में एक समान प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था लागू की गई।
3. इटली के सभी राज्यों में स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं की स्थापना की गई।
4. रेल सेवा का राष्ट्रीयकरण किया गया।
5. विभिन्न राज्यों की सैन्य व्यवस्था को भंग करके एक केन्द्रीय सेना का गठन किया गया. और सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी।

6. 1877 ईवव में अनिवार्य शिक्षा कानून पारित करके 6–9 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

7. उद्योग के क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण की नीति को लागू किया गया।

4.4. पोप और राज्य के बीच मतभेद की समस्या का समाधान

रोम पर अधिकार के पश्चात इटली के एकीकरण का कार्य पूर्ण हो गया लेकिन राज्य और पोप के सम्बन्ध बड़े पेचीदा हो गए। एक ही नगर में दो प्रधान बन गए। जिसमें एक की शक्ति लौकिक थी और दूसरे की पारलौकिक, यदि पोप को रोम में ही रहने दिया जाता है, तो इससे अनेक समस्यांए उत्पन्न हो सकती थी। प्रारम्भ में इटली की सरकार ने पोप को रोम में ही स्थान देने का निश्चय किया और ऐसी व्यवस्था करने के पूर्व यह प्रयास किया कि पोप और रोम दोनवों के सम्बन्ध निर्धारण हो जाए। अतः सम्राट विक्टर इमैनुअल ने पोप पॉयस नवम् से समझौता वार्ता शुरू की किन्तु कोई सफलता नही मिली। अतः इटली की संसद ने 13 मई 1871 ईवव को "पोप के अधिकारो की गारण्टी कानून" पारित किया। इस कानून द्वारा निम्नलिखित व्यवस्थाएं की गई–

1. पोप को इटली के सम्राट की भांति एक प्रभुत्ता सम्पन्न राजा मानते हुए, पोप के राज्य की सीमा वैटीकन एवं आस पास के क्षेत्र तक निश्चित कर दिया गया। उसे महल में निवास करने एवं अपना झण्डा फहराने की अनुमति दे दी गई।

2. पोप के राज्य के शेष भाग को इटली में शामिल करने के बदले में क्षतिपूर्ति के रूप में 5 लाख डालर वार्षिक पेंशन देने की व्यवस्था की गई।

3. पोप के विशेषधिकारों को सुरक्षित रखने का आश्वासन दिया गया। उसे अन्य राज्यों से और वहाँ की जनता से सीधा सम्पर्क रखने की छूट दे दी गई।

4. कैथोलिकों को विश्वास दिया गया कि इटली की सरकार का पोप के धार्मिक अधिकारो पर नियंत्रण लगाने का कोई विचार नही है और पोप के क्षेत्र में इटली के कोई कानून लागू नही होगें।

पोप पॉयस नवम् ने इटली की सरकार द्वारा बनाए गए उक्त कानून को मानने से इंकार कर दिया और कैथौलिको को आदेश दिया कि वह इटली की सरकार के साथ किसी प्रकार का सहयोग न करें एवं इटली के सम्राट के अधीन कोई नौकरी न करें। पोप पॉयस नवम् के उत्तरादिकारी पोप लियों तेरहवें ने भी इस निषेधाज्ञा को जारी रखा उसने स्वयं को डाकू राजा के अधीन कैदी कहा। इस संघर्ष के कारण इटली की सरकार को यह भ बना रहा कि कही पोप का पक्ष लेकर विदेशी शक्तियों इटली पर आक्रमण न कर दे। किन्तु 20 वीं सदी के प्रारम्भ में समाजवाद के बढ़ने के भय से पोप और राजा एक दूसरे के सम्पर्क स्थापित करने लगे। 1905 ईवव में पोप पॉयस दशम् ने कैथोलिकों को राजनीति में भाग लेने की आज्ञा दे दी। अतः 1919 ईवव में पोप और मुसेलिनी के बीच समझौता हो गया और दोनो शक्तियों के बीच मधुर सम्बन्ध बन गए।

4.5. आर्थिक एवं औद्योगिक विकास का प्रयास

इटली पर पहले से ही राष्ट्रीय ऋण राशि काफी बहुत अधिक थी। कम आय एवं अधिक व्यय के कारण घाटे को पूरा करने के लिए जनता के ऊपर कई नवीन कर लगायें गए, करो की वृद्धि से तंग आकर हजारो इटली वासी अमेरिका और अफ्रीका में जाकर बस गए। लोगो ने कर वृद्धि के विरूद्ध क्रान्तिकारी उपायों का आश्रय लेना भी शुरू कर दिया। इस आर्थिक समस्या के समाधान के लिए सरकार ने औद्योगिक उन्नति पर विशेष ध्यान दिया। विद्युत कारखानो की स्थापना की गई और बड़े पैमाने पर जहाजों का निर्माण किया गया। उद्योग धन्धो को प्रोत्साहन देने के लिए संरक्षण नीति अपनायी गई। बैंकिंग क्षेत्र में सुदार किए गए और सहकारी साख समितियों को प्रोत्साहन दिया गया। ब्याज दर में कमी कर दी गई। इसके फलस्वरूप 1900 के बाद इटली के विदेशी व्यापार में काफी वृद्धि हुई। इन सुधारों के कारण इटली एक महत्वपूर्ण औद्योगिक राष्ट्र बन गया।

4.6. समाजवाद का प्रभाव एवं श्रमिक सुधार का प्रयास

इटली में आर्थिक समस्याओं से असन्तुष्ट होकर लोग समाजवाद और प्रजातंत्र विचार धारा की ओर आकृष्ट होने लगे। अतः देश के विभिन्न नगरों मिला, रोम, सिसली में विद्रोह हुए। 1898 ईवव में इटली के कई हिस्सो में खूनी विद्रोह हुए। दक्षिणी एवं मध्य इटली में रोटी की समस्या को लेकर तथा उत्तरी इटली में क्रांन्तिकारी भावनाओं ने विद्रोह को जन्म दिया। समाजवाद का प्रभाव कम करने के लिए सरकार ने दमनकारी उपायों का सहारा लेने के साथ–साथ मजदूरो की देशा सुधारने के कार्य भी किए। 1898 ईवव में वृद्धावस्ता में पेंशन, बिमारी एवं दुर्घटना की स्थिति में श्रमिको के लिए अनिवार्य बीमा योजना लागू की गई। 1902 ईवव मे फैक्टरी अधिनियम बनाकर कार्य करने की दशा में सुधार किया गया. 1908 ईवव में एक कानून बनाकर श्रमिको के लिए सप्ताह में एक दिन के अवकाश की व्यवस्था की गई तथा मजदूर संघो को कानूनी मान्यता प्रदान की गई। इन सुधार उपायों के परिणामस्वरूप श्रमिको की दशा में सुधार होने लगा।

इटली में उच्च एवं मध्यवर्ग को शासन सत्ता में भागीदारी दी गई थी। अतः साधारण जनता के देश में पूर्ण राजनीतिक प्रजातंत्र की स्थापना के लिए मताधिकार के विस्तार की मांग शुरू कर दी। इटली की साधारण जनका की इस महत्वपूर्ण मांग की ओर ध्यान देते हुए सरकार ने 1882 ईवव में एक कानून बनाकर सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यता कम करके मताधिकार का विस्तार किया किन्तु साक्षरता सम्बन्धी योग्यता का प्रतिबंध मताधिकार में जारी रहा। 1912 ईवव में साक्षरता सम्बन्धी योग्यता को भी हरा दिया गया और देश में प्रमुख वयस्क मताधिकार की व्यवस्था लागू हो गई।

4.7 इटली की विदेश नीति

अपनी आन्तरिक समस्याओं को हल करने के बाद 1880 ईवव से इटली ने अपनी विदेशनीति की ओर ध्यान दिया। स्वयं को एक यूरोपीय महाशक्ति के रूप में परिणत करने के लिए इटली ने विभिन्न देशो के साथ मैत्री एवं कूटनीतिक सम्बन्ध बनाने पर बल दिया।

1. **आस्ट्रिया के साथ सम्बन्धः–** इटली के देश भक्तों ने आस्ट्रिया एवं उसके समर्थको को पराजित करके इटली के एकीकरण कार्य को पूर्ण किया था। इटली के उत्तरपूर्व में भूमध्यसागर के समीप स्थित कुछ इटेलियम प्रदेशो पर अभी भी आस्ट्रिया का अधिकार था। इन प्रदेशो को इटली वासी 'परतंत्र इटली' कहते है। दूसरी ओर आस्ट्रिया भूमध्यसागर की ओर विस्तार का इच्छुक था। अतः दोनो देशो के बीच कटुता बना रहा। जर्मन चांसलर विस्मार्क ने जर्मनी को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से इटली के साथ मैत्रीय सम्बन्ध बनाने पर बल दिया। जब 1881 ईवव में फ्रांस ने ट्यूनिस पर अधिकार करके इटली को नाराज कर दिया। तब बिस्मार्क ने मौके का लाभ उठाकर 20 मई 1882 ईवव को जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली के बीच 'त्रिराष्ट्र सन्धि' कराने में सफल रहा। किन्तु यह गुट अन्दर से शक्तिशाली नहीं था क्योंकि इटली के हित आस्ट्रिया एवं जर्मनी के हितो से भिन्न थे।

2. **जर्मनी के साथ सम्बन्धः–** इटली के एकीकरण के कार्य में बिस्मार्क ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया था। बिस्मार्क ने इटली एवं फ्रांस की सम्भावित मित्रता को रोकने के लिए ट्यूनिश के मामले में इटली का समर्थन किया। जब 1881 ईवव में फ्रांस ने ट्यूनिक पर अधिकार कर लिया तब इटली व फ्रांस के बीच सम्बन्ध कटु हो गए। इस कटुता का लाभ उठाकर बिस्मार्क ने 1882 ईवव में इटली को जर्मनी एवं आस्ट्रिया के द्विगुट में शामिल करके त्रिराज्य सन्धि कर ली। किन्तु यह मित्रता अस्वाभाविक होने के कारण स्थायी सिद्ध नही हो सकी। बिस्मार्क के पद त्याग के पश्चात इटली की जर्मनी सम्बन्धी नीति में परिवर्तन हो गया।

3. **फ्रांस के साथ सम्बन्धः–** 1870 ईवव के पश्चात कुछ समय तक फ्रांस और इटली के सम्बन्ध सामान्य रहे। किन्तु पोप की समस्या एवं ट्यूनिस पर अधिकार को लेकर दोनो देशो के सम्बन्ध के कटु हो गया। जब 1881 ईवव में फ्रांस ने ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया, तब फ्रांस की विस्तारवादी नीति से आशंकित होकर इटली ने 1882 ईवव में जर्मनी व आस्ट्रिया के साथ त्रिराष्ट्र सन्धि कर ली। किन्तु इटली का त्रिगुट के साथी देशो पर विश्वास न था। अतः बाद में इटली ने फ्रांस के साथ सम्बन्ध सुधारने का प्रयास शुरू कर दिया। अंततः 1897 ईवव में इटली ने ट्यूनिस पर फ्रांस के अधिकार को स्वीकार कर लिया और अगले वर्ष 1898 ईवव में दोनो देशो के बीच एक व्यापारिक एवं सैनिक सन्धि भी सम्पन्न हुई। 1900 ईवव में फ्रांस एवं इटली के बीच ट्रिपोली एवं मोरक्को के बारे में एक समझौता हुआ। फ्रांस ने यह वचन दिया कि इटली ट्रिपोली पर अपना प्रभाव स्थापित कर ले, दले में, इटली ने मोरक्को में फ्रांस को प्रभाव स्थापित करने की छूट दे दी। 1902 ईवव में इटली ने फ्रांस से एक गुप्त समझौता करके उसे आश्वासन दिया कि यदि फ्रांस का किसी देश से युद्ध हुआ, तो इटली तटस्थ रहेगा। 1904 ईवव में फ्रेंच राष्ट्रपति लूबे ने रोम की यात्रा की, जहाँ उसका भव्य स्वागत किया गया। महायुद्ध काल तक फ्रांस एवं इटली के बीच सहयोग एवं मधुर सम्बन्ध चलता रहा।

4. **इंग्लैण्ड के साथ सम्बन्ध –** इटली के एकीकरण के प्रति इग्लैण्ड के नेताओ का दृष्टिकोण सहानुभूति पूर्ण था। अतः 1887 ईवव में इटली और इग्लैण्ड के बीच एक मैत्री सन्धि हुई। जिसके अनुसार तय हुआ कि यदि तीस शक्ति ने उसका युद्ध हुआ, तो भूमध्यसागर में वे एक दूसरे के हितो की रक्षा करेंगे। इटली ने मिश्र में इग्लैण्ड को समर्थन दिया और बदले में इग्लैण्ड ने ट्रिपोली में इटली की नीति का समर्थन किया। 1896 ईवव में एडोवा की पराजय के बाद इग्लैण्ड ने परोक्ष रूप से इटली की सहायता की। 191 ईवव जब इटली और तुर्की के बीच

युद्ध हुआ, तो इग्लैण्ड ने इटली के विरूद्ध कुछ नही किया। इस प्रकार महायुद्ध तक दोनो देशो के बीच मधुर बने रहे।

5. रूस के साथ सम्बन्ध – 1908 ईवव में आस्ट्रिया ने बर्लिन सन्धि का उल्लघन कर बोस्निया एवं हर्जोगोविना पर अधिकार कर लिया। तब जर्मनी ने आस्ट्रिया के इस कार्य का विरोध नही किया, अब इटली को विश्वास हो गया कि त्रिगुट सन्धि से उसके हित सुरक्षित नही है। अतः अपनी स्थिति सुरक्षित करने के लिए वह रूस की ओर आकर्षित हुआ। 1909 ईवव में इटली और रूस के बीच एक समझौता हुआ। जिसमें यह तय हुआ कि बाल्कान प्रायद्वीप में यथास्थिति बनाए रखते हुए दोनो देश आपसी हितों की रक्षा करेगे। रूस ने ट्रिपोली पर इटली के अधिकार का समर्थन करने तथा इटली ने वासफोरस एवं दर्दिनलीज पर रूस के प्रभाव का समर्थन करने का वचन दिया। इंग्लैण्ड एवं फ्रांस ने भी 'रेकोनिगी समझौता' को मान्यता दे दी। इस समझौते ने स्पष्ट कर दिया कि इटली धुरी राष्ट्रो की अपेक्षा मित्र देशो के अधिक निकट है।

6. इटली की औपनिवेशिक नीति – यूरोप के अन्य देशो की भांति इटली भी औपनिवेशिक विस्तार की आकांक्षा रखता था। इटली ट्यूनिस पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था। किन्तु मई 11881 ईवव में बार्डो की सन्धि द्वारा ट्यूनिस पर फ्रांस का संरक्षण स्थापित हो जाने से इटली को गहरा धक्का लगा। अतः इटली ने फ्रांस के विरूद्ध जर्मनी व आस्ट्रिया के साथ 1882 ईवव में इटली लालसागर में स्थित बेलुल एवं मेसोवा पर अधिकार कर लिया। 1887 ईवव में डोगाली नामक स्थान पर अबीसीनियन सेना ने इटली की सेना को घेर लिया। इस संघर्ष में बड़ी संख्या में इटली के सैनिक मारे गए। 1889 ईवव में अबीसिनिया और इटली के बीच उक्कियाली की सन्धि हो गई और अबीसिनिया इटली का संरक्षक राज्य बन गया। इटली ने लालसागर के तटवर्ती क्षेत्रो को मिलाकर इरीट्रिया नामक उपनिवेश स्थापित किया। बाद में सोमाली लैण्ड पर भी इटली का कब्जा हो गया।

अबीसीनिया पर संरक्षण स्थापित करने के पश्चात इटली ने उसके विभिन्न क्षेत्रो पर अधिकार की योजना बनाई इससे वहाँ का राजा सशंकित हुआ। मार्च 11896 ईवव बेग में इटालियन जनरल बारातियारी ने एडोवा में अबीसीनिया की सेना पर भीषण आक्रमण कर दिया किन्तु उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा। अतः अटली को बाध्य होकर वचन देना पड़ा कि वह इरीट्रिया के उपनिवेश का विस्तार नही करेगा।

एडोवा की पराजय के बाद कुछ वर्षो तक इटली की औपनिवेशिक महत्वाकांक्षा तम सी गयी किन्तु कूटनीतिक सम्बन्धों के विस्तार के पश्चात इटली पुनः औपनिवेशिक विस्तार की ओर उन्मुख हुआ। 1900 ईवव फ्रांस व इटली के बीच एक समझौता हुआ। जिसके अनुसार फ्रांस को मोरक्को में तथा इटली को ट्रिपोली में प्रभाव बढ़ाने का आश्वासन मिला। 1909 ईव में इटली ने रूस से रेकोनिगी समझौता किया। जिसके अनुसार रूस ने इटली को ट्रिपोली एवं सारेनाइका पर प्रभाव बढ़ाने की छूट दे दी। अतः जब 1911 ईव में अगादिर का संकट उत्पन्न हुआ, तब मौके का फायदा उठाकर इटली ने ट्रिपोली पर अधिकार कर लिया और उसका नाम बदलकर लीबिया रखा। तुर्की के सुल्तान ने इस कदम का विरोध किया। उधर 1912 ईव बाल्कान लीग और तुर्की के बीच युद्ध छिड़ गया। अतः तुर्की ने इटली के साथ लोसाने की सन्धि कर ली और ट्रिपोली पर इटली के अधिकार को मान्यता दे दी। इश प्रकार अफ्रीका में इरीट्रिया,

सोमालीलैण्ड, लीबिया पर अधिकार कर इटली ने अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा को पूर्ण किया।

4.8. सारांश

सन् 1870 ईव में विदेशी शासन सत्ता से मुक्त होकर और छोटे–छोटे राज्यों को मिलाकर इटली के एकीकरण का लक्ष्य पूरा हुआ। संयुक्त इटली को एक नवीन संविधान मिला। 1870 ईव 1876 ईव तक संसद में दक्षिण पंथीदल का बहुमत रहा। तत्पश्चात 1896 ईव तक वामपंती दल बहुमत बना रहा और टैप्रेटिस एवं किप्सी ने प्रधानमंत्री के रूप में काफी महत्वपूर्ण कार्य किए। इटली की सरकार ने राष्ट्रीय एकता की स्थापना, आर्थिक एवं औद्योगिक विकास, पोप व राज्य के बीच मतभेद की समस्या का समाधान तथा श्रमिक सुधार कार्य करके देश को आन्तरिक सुदृढ़ता प्रदान की। इटली को एक यूरोपीय महाशक्ति बनाने के लिए वहाँ के राजनीतिज्ञों ने विभिन्न देशो यथा इग्लैण्ड, रूस एवं फ्रांस के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर साम्राज्य विस्तार का प्रयास किया। इटली ने कूटनीतिक गुप्त संधियों के माध्यम से उत्तरी अफ्रीका में इरीट्रिया, सोमाली लैण्ड एवं ट्रिपोली पर अधिकार कर अपनी औपनिवेशिक आकांक्षा को पूरा किया। प्रथतम विश्वयुद्ध में धुरी राष्ट्रो से सम्बन्ध विच्छेद कर इटली ने मित्र देशो (इग्लैण्ड, फ्रांस, रूस) के साथ मिल कर महायुद्ध में भाग लिया और विजय प्राप्त की।

4.9. बोध प्रश्न

1. नव इटली साम्राज्य की गृहनीति की विवेचना कीजिए।
2. पोप और इटली राज्य के बीच मतभेद की समस्या के समाधान पर एक लेख लिखिए।
3. 1871 ईव के पश्चात इटली की सरकार ने श्रमिक सुधार के सम्बन्ध में क्या प्रयास किये।
4. 1871 ईव 1914 ईव के बीच इटली की विदेश नीति का परीक्षण कीजिए।

इकाई–5 रूसी साम्राज्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 जार एलेक्जेण्डर द्वितीय

5.3 जार एलेक्जेण्डर तृतीय

5.4 जार निकोलस द्वितीय की गृह एवं विदेशनीति

5.5 सारांश

5.6 बोध प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे कि–

- यूरोप की राजनीति में 19 वीं सदी में रूसी साम्राज्य की स्थिति क्या थी।
- रूस के जार एलेक्जेण्डर II के शासन काल की प्रमुख घटनाएँ क्या थी।
- जार एलेक्जेण्डर II की प्रतिक्रियावादी एवं रूसीकरण की नीति के फलस्वरूप असंन्तोष क्यों उत्पन्न हुआ।
- जार निकोलस II ने निरंकुश शासन व्यवस्था के विरूद्ध जो जन असंतोष उत्पन्न हुआ, तत्पश्चात 1905 ईव की क्रान्ति का जन्म कैसे हुआ।

5.1 – प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपका परिचय 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी, फ्रांस एवं इटली के राजनीतिक इतिहास के बारे में हुआ। इस इकाई में आप रूसी साम्राज्य और रूस के जार शासकों के शासनकाल की घटना की जानकारी प्राप्त करेंगे। जार एलेक्जेण्डर I एवं निकोलस I की उदार एवं प्रतिक्रिया वादी भावनाओं का सम्मिश्रण था। रूस के जार निकोलस II एलेक्जेण्डर II ने उदार निरंकुश नीति और एलेक्जेण्डर III ने प्रतिक्रियावादी नीति का पालन किया।

रूस के जार की प्रतिक्रियावादी एवं दमनकारी निति के फलस्वरूप जनता में असंतोष काफी बढ़ गया। धीरे–धीरे रूस के किसानों एवं मजदूरो के ऊपर समाजवादी प्रभाव बढ़ने लगा। अतः भ्रष्ट जारशाही शासनतंत्र के विरूद्ध उत्पन्न जन असंतोष ने 1905 ईव की क्रान्ति को जन्म दिया।

5.2 जार एलेक्जेण्डर द्वितीय (1855–81 ई0)

1870 ईव में रूस का शासक एलेक्जेण्डर प्प (1855–81) था। उसने शासन काल में प्रथम चरण (1855–65 ईव) में उदार एवं सुधारवादी नीति अपनायी। उसने शिक्षा पद्धति में आमील परिवर्तन किए और सेंसर प्रणाली में कुछ ढील दी। विश्वविद्यालयों एवं छात्रों पर से कई कठोर प्रतिबन्ध हटा लिया ततथा रेक्टर चुनने के लिए चुनाव कराया। एलेक्जेण्डर प्प का सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'कृषि दोसों की स्वतन्त्रता' था। 15 जनवरी 1861 ईव की राजाज्ञा द्वारा रूस के कृषि दासो को स्वतंन्त्रता दे गई। उस कानून द्वारा कृषि दासो को स्वावलम्बी बनाने तथा जमीदार व कृषि दास किसानों के बीच भूखण्ड क्षतिपूर्ति की योजना प्रस्तुत की गई।

एलेक्जेण्डर II ने स्थानीय शासन सम्बन्धी सुधार लागू किया। इसके अन्तर्गत स्थानीय सभायें (जेम स्टवो) की स्थापना की गई। प्रान्तों एवं जिलों में जेमस्टवों की कार्यकारिणी सभा के सदस्यों का बोर्ड स्थानीय शासन, शिक्षा, चिकित्सा, उद्योग, सड़क, पुल, अस्पतालों का प्रबन्ध, एवं देखरेख करती थी। उन्हें अपने कार्यो में पूर्ण स्वायत्ता प्राप्त थी किन्तु वे अधिकतर पुलिस एवं राज्य कर्मचारियों के सहयोग पर निर्भर थे। एलेक्जेण्डर II ने न्यायिक व्यवस्था में सुधार करते हुए कानूनी प्रक्रिया की जटिलता एवं यायालय के कठोर दण्ड को समाप्त कर दिया। 20 नवम्बर 1864 ई0 को एक कानून पारित कर रूस में यूरोपीय विधिशास्त्र के सिद्धान्तों को मान्यता दे दी गई। इस कानून द्वारा अनेक महत्वपूर्ण न्यायालयों की स्थापना एवं ज्यूरी द्वारा मुकदमों की सुनवाई करने सम्बन्धी सुधार किए गए।

किन्तु उसने सुधारो का सामन्तो एवं जमीदारों ने घोर विरोध किया। दूसरी ओर जनता सुधारो के कारण संवैधानिक सुधारों की आशा करने लगी, तब जार ने और सुधारो की मांग अस्वीकार कर दी और आन्दोलनकारियों के प्रति दमन नीति अपनायी।

शासन के द्वितीय चरण में (1866–81 ईव) एलेक्जेण्डर II ने जनअधिकारो की मांग के विरूद्ध दमनकारी नीति का अनुसरण किया। अतः सरकार के विरूद्ध निहिलिस्ट आन्दोलन (शून्यवादी) खड़ा हुआ। ये शून्यवादी रूस के बौद्धिक वर्ग के उग्र व्यक्तिवादी लोग थे, जो प्रत्येक मानवीय संस्था एवं नीतियों को तर्क की कसौटी पर कसते थे। थोड़ी सी रूसी संस्थाए ही इस कसौटी पर खरी उतरी। अतः शून्यवादियो ने सरकार के विरूद्ध सक्रिय आन्दोलन चलाया। आगे चल कर निहिलिस्टो ने हिंसात्मक उपायो का सहारा लिया।

विदेश नीति के क्षेत्र में एलेक्जेण्डर II ने पेरिस सन्धि की कालासागर सम्बन्धी शर्तो को अमान्य कर दिया। उसने कालासागर क्षेत्र में रूसी नौ सैनिक शक्कि बढ़ाने का निश्चय किया। इस सम्बन्ध में रूस ने बाल्कान क्षेत्र की स्लावजाति के ईसाईयो की रक्षा एवं कालासागर में राज्य विस्तार पर बल दिया। रूस ने बाल्कान क्षेत्र की स्लाव जातियों को तुर्की के विरूद्ध विद्रोह के लिए प्रोत्साहित किया। 1870 ईव में रूसी प्रयासो के फलस्वरूप तुर्की के सुल्तान ने बुल्गोरिया ने चर्च की पृथक धर्माध्यक्ष या एर्ग्जाक नियुक्त कर दिया। इसके पूर्व यह चर्च कुस्तुनतुनिया के ग्रीक चर्च के अधीन था। इसके परिणाम स्वरूप रूस और तुर्की के सम्बन्ध कटु हो गये।

13 मार्च 1881 ईव को जार एलेक्जेण्डर की गाड़ी पर निहिलिस्ट आन्दोलनकारियों ने बम फेका, अतः वह बुरी तरह घायल हो गया और कुछ समय बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।

5.3 एलेक्जेण्डर तृतीय (1881–1894 ई0)

1881 ई0 में एलेक्जेण्डर II की मृत्यु के बाद उसका 36 वर्षीय पुत्र एलेक्जेण्डर तृतीय जार बना। वह एक निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी शासक था। उसने सुदारो एवं उदारवादियो के प्रति शत्रुतापूर्ण नीति अपनायी तथा समस्त सुधारो को समाप्त कर दिया। स्थानीय स्वशासन समितियो की शक्तिक्षीण कर दी। प्रेस की स्वतंत्रता, शिक्षकों व छात्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया देश भर में गुप्तचरो की नियुक्ति की और विदेशी विद्वानो द्वारा लिखित पाठ्य पुस्तको का प्रचलन बंद कर दिया तथा पाश्चात्य नवीन विचारो के प्रवेश पर रोक लगा दिया। एलेक्जेण्डर II ने शासन के केन्द्रीयकरण की नीति का पालन किया और सामंतवर्ग को संरक्षण दिया।

जार एलेक्जेण्डर तृतीय ने गौर रूसी लोगो का रूसीकरण करने की नीति अपनायी। उसने 'एक रूस, एक धर्म और एक जार' का नारा दिया तथा पोल, यहुदी, जर्मन, आर्मीनियाई एवं अन्य अल्पसंख्यक जातियो के ऊपर घोर अत्याचार किए। उसने यहुदियों की आर्थिक गतिविधियों को हानिप्रद प्रभाव की जाँच तथा ईसाई आबादी की रक्षा के लिए 1881 ईव में एक आयोग नियुक्त किया। 1882 ईव में एक राजाज्ञा द्वारा यहुदियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाय दिया। 1891 ईव में यहुदी व्यापारियों एवं शिल्पियों को बड़ी संख्या में मास्को से निकाल दिया गया। उसके शासनकाल में प्रतिक्रियावादी लोगों ने यहुदियों के मकानों एवं दुकानों पर हिंसक आक्रमण किए तथा उनकी हत्या की। सी प्रकार बाल्टिक क्षेत्र के प्रान्तों में रहने वाले जर्मन, पोल, आमीनियाई, जार्जियाई मूल के लोगो के विरूद्ध दमन चक्र चलाया तथा स्कूलों के रूसीकरण की नीति अपनायी कट्टरपंथी आर्थोचडाक्स चर्च ने धर्मपरिवर्तन का जोरदार अभियान चलाया। इसके परिणामस्वरूप रूसी अल्पसंख्यकों में अलगाववादी विचारधारा का विकास हुआ।

वस्तुतः औद्योगिक उन्नति की दृष्टि से एलेक्जेण्डर का शासन काल अति महत्वपूर्ण था। उसने रूस के औद्योगिकीकरण के लिए 1892 ईव में सर्जियस डी बिट को अर्थ मंत्री नियुक्त किया। सर्जियस ने विदेशी पूँजीपतियों को रूसी उद्योग एवं खानो में पूँजी निवेश हेतु बढ़ावा दिया तथा फ्रांस से विदेशी ऋण प्राप्तत किया. उसने देश में रेल एवं सड़क यातायात का भई विस्तार किया। यूरोप को प्रशान्त महासागर से जोड़ने वाली ट्रांस साइबेरियम रेल मार्ग का निर्माण शुरू किया। इसी प्रकार 'संरक्षण की नीति' अपनाकर रूसी उद्योग धन्धो को प्रोत्साहन दिया गया। इसके फलस्वरूप 19 वीं सदी कके अन्तिम दशक में रूस का तीव्र औद्योगिक विकास शुरू हुआ। 1890 ईव में उद्योगों में कुल पूंजी नियोजन 9000 लाख रूबल था। किन्त औद्योगिक विकास के कारण रूस में राजनीतिक अधिकारो एवं श्रम सुधारो की मांग जोर पकड़ने लगी। 1894 ईव में एलेक्जेण्डर की मृत्यु हो गई।

5.4. जार निकोलस द्वितीय (1894–1917 ई0)

1894 ईव में एलेक्जेण्डर तृतीय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र निकोलस द्वितीय जार बना। वह भी घोर निरंकुशतावादी एवं प्रततिक्रियावादी शासक था।

उसके ऊपर महारानी एलेक्जेण्ड्रा एवं रासपुटीन नामक साधु का काफी प्रभाव था। निकोलस द्वितीय ने केन्द्रीयकृत शासन नीति अपनायी। वह विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को मूर्खतापूर्ण स्वप्न मानता था। निकोलस ने गृहनीति के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य किए–

1. **निरंकुश शासन नीति** – जार निकोलस निरंकुश शासन नीति का समर्थक था। उसने प्रतिक्रियावादी सलाहकारो की सलाह से शासन चलाया। जार की भ्रष्ट नौकरशाही ने जनता के अधिकारो एवं स्वतंत्रता का दमन किया तथा विरोधियो को गिरफ्तार कर दण्डित किया। पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों एवं प्रेस पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया।

2. **गैर रूसियो पर अत्याचार** – निकोलस द्वितीय की रूसियो के प्रति नीति–अत्यन्त कठोर थी। उसने अनेको यहूदियो की सामुहिक हत्याए करायी। बाल्टिक प्रदेशो में जर्मनी, लिथुनियनों, यहूदियो और फिनलैण्ड में फिनो पर घोर अत्याचार किए। इन प्रदेशो के निवासियो के ऊपर रूसी भाषी एवं रूसी चर्च को जबरन थोपा गया।

3 **जनता के ऊपर करारोपण** – जार निकोलस द्वितीय ने जनता के ऊपर कई नवीन कर लगाये। इस कर का भार गरीबो और किसानो पर अधिक पड़ा। किसानो के जीवन का एक मात्र लक्ष्य इतना कमा लेना था कि सरकारी कर का भुगतान किया जा सके।

4. **औद्योगिक उन्नति** – यद्यपि निकोलस ने कठोर नीतियो का पालन किया किन्तु उसने रूस की औद्योगिक उन्नति पर ध्यान दिया. उसने रूस में विदेशी पूंजीपतियों को निवेश हेतु प्रोत्साहित किया तथा यातायात के साधनों का विकास किया। उसने लोहा, कोयला उद्योग को बढ़ावा दिया तथा अनेक नवीन तेल कुओं को खुदवाया। निकोलस द्वितीय के समय में ही ट्रास कैस्पियन रेलवे का निर्माण हुआ। रूस में 8 आधारभूत औद्योगिक क्षेत्र थे। जहाँ वस्त्र निर्माण, धातु निर्माण उद्योग मशीनरी निर्माण एवं रासायनिक उद्योग के संयत्र स्थापित थे।

5. **विदेश नीति** – विदेश नीति के क्षेत्र में जार निकोलस के शासन काल में निम्नलिखित उल्लेखनीय घटनाएं हुई–

1. रूस और फ्रांस के बीच 31 दिसम्बर 1893 ईव को एक गुप्त सैन्य सन्धि की गई।

2. जार निकोलस ने 24 अगस्त 18999 ईव को हेग में एक सम्मेलन बुलाया। जिसका उद्देश्य राष्ट्रो के बढ़ते हुए मतभेदो को दूर करना और हथियारो के खर्च को कम करना था। किन्तु कोई सफलता नही मिली।

3. मई 1897 ईव में रूस और आस्ट्रिया के बीच बाल्कान क्षेत्र के सम्बन्ध में एक समझौता हुआ। जिसके अनुसार दोनो देशो के बाल्कान क्षेत्र में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने का वचन दिया।

4. 1896 ईव में रूस और चीन के बीच एक सन्धि हुई और रूस को मंचूरिया होकर ट्रास साइबेरिया रेलमार्ग बनाने तथा युद्ध काल में बन्दरगाहो के प्रयोग का अधिकार मिल गया। बदलें में रूस ने वचन दिया कि किसी तीसरी शक्ति के आक्रमण के विरूद्ध चीन को सहयता देगा।

5. जार निकोलस के शासन काल की सबसे उल्लेखनीय घटना 1904–05 ईव का रूस जापान युद्ध था। इस युद्ध में छोटे देश जापान ने विशाल देश रूस की सेना को पराजित कर दिया। जिससे रूस की अन्तराष्ट्रीय प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा।

6. निकोलस ने 1907 ईव में इग्लैण्ड से एक समझौता किया। यह एग्लो–फ्रेंच सुरक्षात्मक सन्धि ही थी। जिसे रूस ने भी स्वीकार कर लिया। किन्तु जर्मनी में इसकी भयंकर प्रतिक्रिया हुई।

7. निःशस्त्रीकरण की समस्या पर विचार केलिए हेग में द्वितीय सम्मेलन बुलाया गया किन्तु इग्लैण्ड के निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव का जर्मनी ने घोर विरोध किया। इस सम्मेलन में यूरोप के देशो की गुटबन्दी स्पष्ट दिखाई देने लगी। आपसी मतभेदो के कारण यह सम्मेलन भी असफल हो गया।

अतः यूरोप का वातावरण सैन्य राष्ट्रवाद गुटबन्दियों एवं शास्त्रीकरण के कारण काफी खराब हो गया। उधर आस्ट्रिया एवं सर्विया के बीच सत्रुता भी काफी बढ़ गई। रूस की सहानुभूति सर्विया के साथ थी। अतः जब सेराजेवो हत्याकाण्ड के बाद आस्ट्रिया ने सर्विया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तब रूस ने सर्विया का समर्थन किया। इस पर जर्मनी ने आस्ट्रिया का साथ दिया। इस तरह यूरोप में प्रतम विश्वयुद्ध शुरू हो गया।

जन असंतोष और 1905 ईव की क्रान्ति – रूस की जारशाही शासन के अत्याचारो समाजवाद के प्रभाव में वृद्धि, किनास एवं श्रमिक असंतोष में वृद्धि आदि के कारण व्यापक असंतोष फैला। कार्ल मार्क्स के विचारो से प्रभावित होकर सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी का गठन हुआ। जिसके सदस्य किसान एवं मजदूर थे। आगे चलकर समाजवादी दल में मतभेद बढ़ गया और प्रार्टी बोल्सेविक एवं मेन्शेविक 2 दलो में विभक्त हो गया। ये दोनो दल श्रमिको के असंतोष को बढ़काने लगे। विदेश में शिक्षण प्राप्त करने आए रूसी युवको ने भी देश में उदार शासन की स्थापना का प्रयास शुरू कर दिया। क्रान्तिकारियो ने 1904 ईव में 'यूनियन आफ लिबरेटर्स' नामक संस्था की स्थापना की। इसी समय 1904–05 ईव रूस जापान युद्ध शुरू हो गया और इस युद्ध में जापानी सेना ने रूसी सेना को पराजित कर दिया। इस पराजय के कारण जन असंतोष उग्र हो गया। क्रान्तिकारियों ने गृहमंत्री वान प्लेहवे के ऊपर बम फेककर हत्या कर दी। जनता मास्को एवं अन्य प्रमुख नगरो की सड़को पर 'निरंकुश शासन का अन्त हो' के नारे लगाए और वैधोनिक शासन की मांग की किन्तु जार द्वारा सवैधानिक शासन की मांग अस्वीकार कर दिये जाने पर रूस में 1905 ईव की राज्य क्रान्ति शुरू हो गई। किसानो ने जमीदारो के भवनो में आग लगा दी। 22 जनवरी 1905 ईव को सेन्ट पीटर्सवर्ग के मजदूरो ने जार सेवा में उपस्थित होकर अपना कष्ट सुनाने का निश्चय किया। सभी मजदूर निहत्थे थे, जब वे राजमहल के समीप पहुँचे तक जार ने भीड़ पर गोली चलाने का आदेश दे दिया। रूस के इतिहास में यह दिन खूनी रविवार के नाम से प्रसिद्ध है। इस हत्याकाण्ड के पश्चात् देश भर में क्रान्तिकारी हिंसात्मक घटनाएं शुरू हो गई। और सम्पूर्ण देश में अराजकता फैल गई। स्थिति को बेकाबू होते देख कर जार निकोलस प्प ने जनअसंतोष को कम करने के लिए 30 अक्टूबर 1905 ईव को 'सुधारो का घोषणा पत्र' प्रकाशित किया। जार ने प्रतिक्रियावादियो को उच्च पदो से हटा दिया और उदारवादी विट को पुनः प्रधानमंत्री नियुक्त किया। इस घोषणा पत्र द्वारा जार ने नागरिको को धार्मिक भाषण, लेखन की स्वतंत्रता, संस्था बनाने, सम्मेलन करने एवं डयूमा (संसद) की स्थापना का आश्वासन दिया।

कन्तु शीघ्र ही क्रान्तिकारी नेताओ एवं राजनीतिक दलों में मतभेद हो गया। इस फूट का लाभ उठाते हुए जार निकोलस प्प ने एक दूसरा आदेश जारी कर अक्टूबर 1905 ईव की घोषणा के प्रभाव को कम कर दिया। उसने ड्यूमा को प्रथम सदन मानकर साम्राज्य परिषद के नाम से एक द्वितीय सदन का निर्माण कर दिया। जिसके सदस्यो का मनोनय जार द्वारा किया जाना था। साथ ही यह आवश्यक कर दिया गया कि कानून निर्माण में ड्यूमा के साथ साम्राज्य परिषद की स्वीकृत लेना अनिवार्य है। इस प्रकार ड्यूमा एक मात्र प्रतिनिधि सभा होने के अधिकार से वंचित कर दी गई।

जब जार निकोलस द्वितीय ने 1906,1907,1914 ईव में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ ड्यूमा को भंगकर पुनः निरंकुशतावादी नीति लागू करने का प्रयास किया, तबरूस की जनता ने पुनः 1917 ईव क्रान्ति का विस्पोट कर जारशाही शासन सत्ता का अंत कर दिया तथा उसके स्थान पर नवीन क्रान्तिकरी सरकार की स्थापना की गई।

5.5. सारांश

रूस के जार निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन सत्ता के समर्थक थे। जार एलेक्जेण्डर II एवं निकोलस II प्रारम्भ से उदार नीति अपनाने के बाद पुनः प्रतिक्रयाशासक बन गया। उसके उत्तराधिकारी एलेक्जेण्डर II न्यायालय के सुधार एवं स्थानीय स्वशासन की स्थापना की। किन्तु जब सुधारो के विरूद्ध सामन्तो एवं जमीदारो की तीव्र प्रतिक्रिया हुई और संवैदानिक शासन की मांग जोर पकड़ने लगी, तब जार एलेक्जेण्डर II भी निरंकुश शासक बन गया। अंततः सरकार के विरूद्ध निहिलिस्ट आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। और जार की हत्या कर दी गई। 1881 ईव में जार एलेक्जेण्डर गद्दी पर बैठा। उसका शासन काल दमन और प्रतिक्रियावादी कार्यो से परिपूर्ण रहा। उसने सभी सुधारो को समाप्त कर दिया और उदारवादियों के प्रति दमननीति अपनायी। उसकी मृत्यु के बाद 1894 ईव में निकोलस II जार हुआ। वह उदारवाद और सुधारो का घोर विरोधी था। जारशाही शासन की निरंकुशता एवं भ्रष्टाचार ने जनअसंतोष को बढ़ा दिया और जब विदेशी नीति के क्षेत्र में निकोलस असफल रहा तथा जापान के हाथो रूसी सेना को पराजय का मुँह देखना पड़ा, तब 1905 ईव में राज्य क्रान्ति हो गई। यद्यपि जार ने शासन सुधारो की घोषणा कर जन असंतोष को सान्त कर दिया। तथापि जब कुछ समय बाद वह पुनः निरंकुश शासन चलाने लगा तथा ड्यूमा के अधिकारो की अवहेलना कर निरंकुश शासन की स्थापना का प्रयत्न करने लगा। तब रूसी श्रमिको एवं किसानो ने साम्यवादियो के साथ मिलकर 1917 ईव की रूस के क्रान्ति को जन्म दिया। इस क्रान्ति के फलस्वरूप निरंकुश राजशाही शासन का अन्त हो गया।

5.6 बोध प्रश्न

1. जार एलेक्जेण्डर II के शासन काल की घटनाओ का वर्णन कीजिए।
2. जार एलेक्जेण्डर II के कार्यो पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
3. जार निकोलस II की गृह एवं विदेशनीति पर प्रकाश डालिए।
4. 1905 ई0 की राज्यक्रान्ति की घटनाओ का वर्णन कीजिए।

MAHY-106 (N) Part-I

आधुनिक विश्व (1870 ई० से 2000 ई०)

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय

खण्ड–2

विश्व राजनिति और औद्योगिक समाज II

पूर्वी समस्या के संदर्भ में बर्लिन व्यवस्था तथा उसके विश्वव्यापी परिणाम

अफ्रीका का बॅटवारा

यूरोप का औपनिवेशिक विस्तार

जर्मनी की विदेश नीति (1890 ई.–1914 ई.)

प्रथम विश्व युद्ध

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज

MAHY-106 (N)

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	मा0 कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक एवं आचार्य इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो.. उमाशंकर गुप्ता	आचार्य, इतिहास राजकीय महाविद्यालय, जक्खिनी, वाराणसी प्रथम खंड (1–5 इकाई)
डॉ. अर्चना सिंह	सह आचार्य, इतिहास काशी नरेश राजकीय महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोहीं द्वितीय खंड (1–5 इकाई)
प्रो. अनुभा श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास बीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी तृतीय खंड (1–5 इकाई)

सम्पादक

प्रो0 पी0 एल0 विश्वकर्मा	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज वर्ष–2023

ISBN :978-93-94487-89-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

इकाई 1

पूर्वी समस्या के संदर्भ में बर्लिन व्यवस्था तथा उसके विश्वव्यापी परिणाम

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्धेश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 पूर्वी समस्या

1.3.1 रोगग्रस्त तुर्की साम्रज्य

1.3.2 यूनान का स्वतन्त्रता संग्राम

1.3.3 यूरोप का रूख

1.3.4 बोध प्रश्न–1

1.4 पूर्वी समस्या का अन्तराष्ट्रीय पहलू: क्रीमिया युद्ध

1.4.1 पेरिस की सन्धि

1.4.2 क्रीमिया–युद्ध के महत्व और परिणाम

1.4.3 बोध प्रश्न–2

1.5 पूर्वी समस्या की जटिलता ने रुसी–तुर्की युद्ध

1.5.1 बर्लिन सम्मेलन/बर्लिन व्यस्था

1.5.2 बर्लिन व्यस्था का मूल्यांकन

1.5.3 बोध प्रश्न–3

1.6 सांराश

1.7 शब्दावली

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.1 उद्धेश्य

इस इकाई में पूर्वी समस्या और इस समस्या के समाधान के लिए जिन नियमों को बनाया गया अर्थात् बर्लिन व्यवस्था पर चर्चा प्रस्तुत की गयी है। साथ ही यह प्रयत्न किया गया है कि यह चर्चा पूर्वी समस्या और उनके अन्तराष्ट्रीय प्रभाव को समझने में किस प्रकार सहायक है। इस इकाई में आप जान सकेंगेः

- पूर्वी समस्या और उसका स्वरूप
- यूनान का स्वतन्त्रता संग्राम
- पूर्वी समस्या का अन्तराष्ट्रीय पहलूः क्रीमिया युद्ध
- बर्लिन व्यवस्था

1.2 प्रस्तावना

तुर्की साम्राज्य की स्थापना इस्लामी साम्राज्य विस्तार की कहानी का एक भाग है। जिस समय इस्लामी साम्राज्य का पतन हो रहा था उस समय मध्य एशिया में रहने वाले साल्जुको तुर्कों ने कुछ समय के लिए इस्लाम का उद्धार किया। 1071 में उन्होंने पूर्वी रोमन साम्राज्यों को हराकर उनके यूरोपीय यूरोपियन देशों को चुनौती दी। 1453 में उन्होंने रोमन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया शीघ्र ही यूरोप का बाल्कन प्रायद्वीप का बहुत बड़ा भाग तुर्की साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। तलवार के बल पर कायम किया गया या साम्राज्य क्षेत्रफल की दृष्टि से रूस के बाद सबसे बड़ा था लेकिन इसमें विभिन्न जातियां निवास करती थी जो समय–समय पर तुर्की साम्राज्य से स्वतंत्र होने का प्रयास कर रही थी। जिसकी चर्चा इस इकाई में की जा रही है, साथी इनको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करने में किस प्रकार विभिन्न देशों का इस क्षेत्र में स्वार्थ सिद्ध हो रहा था और वे तुर्की साम्राज्य के पतन के समय अपने देश का क्षेत्रफल बढ़ाने के लिए दिन किन–किन नीतियों का प्रयोग कर रहे थे, इन सभी पहलू पर ध्यान देने का प्रयास किया जाएगा।

1.3 पूर्वी समस्या

तलवार के बल पर कायम किया गया तुर्की साम्राज्य आरंभ में बड़ा शक्तिशाली था जिसमें बोस्निया, हर्जेगोविना, सर्बिया, यूनान, रूमानिया, अल्बेनिया जैसे विशाल राज्य आते थे। लेकिन 18वीं शताब्दी में उसमें निर्बलता के लक्षण दिखाई देने लगे। 1815 के बाद तुर्की साम्राज्य की शक्ति तेजी से क्षीण होने लगी थी और तलवार के बल पर साम्राज्य को अधिक दिनों तक टिकाये रखना असंभव था। यह समय राष्ट्रीयता एवं प्राजतत्रिकता भावनाओं का समय थाअतः तुर्की साम्राज्य के अधीन राज्य स्वतंत्रता की मांग करने लगे। इस प्रकार तुर्की साम्राज्य के पतन के फल स्वरुप यूरोपियन इतिहास में जिस समस्या का जन्म हुआ उसी को पूर्वी समस्या के नाम से जाना जाता है।

1.3.1 रोग ग्रस्त तुर्की साम्राज्य

पूर्वी समस्या एक अंतर्राष्ट्रीय प्रश्न था। या एक ऐसा क्षेत्र था जहां यूरोप के अनेक देशों के हित आपस में टकराते थे। रूस और ऑस्ट्रिया दोनों में घोर प्रतिस्पर्धा थी तथा वह तुर्की साम्राज्य को निकल जाना चाहते थे। 18वीं शताब्दी में यह दोनों शक्तियां कभी अलग

अलग और कभी मिलकर तुर्की साम्राज्य के विरोध युद्ध करते रहे। इस काल में तुर्की साम्राज्य की शक्ति एकदम कमजोर होने लगी और उसका पतन होने लगा। ऐसी हालत में तुर्की साम्राज्य एक रोगी समझे जाने लगा और उसे यूरोप का मरीज कहा जाने लगा।

तुर्की साम्राज्य जब इस हालात से गुजर रहा था तो यूरोप के सामने यह समस्या आई थी उसके पतन के बाद उसे साम्राज्य का क्या होगा। इस समय रूस और ऑस्टिया की आंखें तुर्की साम्राज्य पर घड़ी थी और 1815 के बाद उनकी महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाना असंभव सा हो गया।

1.3.2 यूनान का स्वतंत्रता संग्राम

जब तुर्की साम्राज्य का पतन शुरू हुआ तो उसके अधीन पराधीन जातियों में नई आशा का संचार हुआ और वह अपनी स्वतंत्रता का स्वप्न देखने लगी। फ्रांसीसी क्रांति का प्रभाव हो रही यूरोप में दिखाई देने लगा था और यह प्रभाव बाल मां प्रायद्वीप के देशों में भी पढ़ने लगा पोस्ट ऑफिस यूनान का स्वतंत्र ता युद्ध विनय कांग्रेस के बाद बाल्कन राष्ट्रीयता की सबसे प्रमुख घटना थी।

यूनान एक बात प्राचीन देश है जिसकी अपनी विशाल सभ्यता और संस्कृति है बाद में चलकर इस देश का पतन हो गया और यूनान तुर्की साम्राज्य का एक अंग बन गया। 1815 ई के बाद राष्ट्रीयता की भावना ने पूरे यूनानियों को अपनी प्राचीन गौरव गरिमा के प्रति जागृत किया। उन्होंने या अनुभव किया कि जिस देश ने संसार को अनुपम संस्कृति दिन देने दी है वह अब और तंत्र है और उसे पर घर अत्याचार हो रहा है। यूनान को इंग्लैंड और रूस से यूनानियों को काफी प्रोत्साहन मिल रहा था। तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध 1821 में यूनानियों ने विद्रोह का झंडा उठा लिया। यूनानियों का सबसे पहले विद्रोह 'हिप्सलांटी' के नेतृत्व में 'भोल्डेविया' में 1821 में हुआ जिसमें हजारों तुर्की का वध कर दिया गया। यूनानियों को रूस से सहायता की उम्मीद थी लेकिन रूस का सम्राट 'अलेक्जेण्डर' इस समय मेटरनिख के प्रभाव में था जिसके कारण उसने यूनानियों को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी। जिसका लाभ तुर्की सरकार को मिला और 3 महीने के भीतर ही विद्रोह दबा दिया गया। लेकिन यूनान में राष्ट्रीयता जोर पकड़ रही थी जिस रोक पाना संभव नहीं था।

भोल्डेविया के विद्रोह के समाप्त होते ही यूनान के अन्य भागों में मेरिया और ईजियन सागर में स्थित द्वीपों में बड़े पैमाने पर विद्रोह शुरू हो गये। सभी देशों से स्वयंसेवक लोग यूनान के ईसाइयों की सहायता करने के लिए यूनान पहुंचने लगे। तुर्की सुल्तान के लिए यूनान का विद्रोह एक कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर रहा था। वह इतने बड़े विद्रोह के लिए तैयार भी नहीं था। उसने मिस्त्र के शासक मोहम्मद अली से सहायता मांगी। मोहम्मद अली ने बड़ी निर्दयता पूर्वक विद्रोह दबा दिया।

1.3.3 यूरोप का रुख

यूनान के विद्रोह का प्रश्न यूरोपियन व्यवस्था के सामने लाइबेख कांग्रेस में उपस्थित हुआ। मेटरनिख का कहना था कि यूनान के मामले में किसी प्रकार का विदेशी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। इंग्लैंड भी विदेशी हस्तक्षेप का विरोधी था। तुर्की साम्राज्य के अस्तित्व को किसी तरह कायम रखना उसकी विदेश नीति का मुख्य तत्व था। पर यूनान की पराजय से रूस परेशान था क्योंकि दक्षिण पश्चिम की ओर बढ़ना उसकी मुख्य नीति थी जिसके लिए तुर्की साम्राज्य का पतन आवश्यक था। अतः वह किसी भी प्रकार तुर्की साम्राज्य में हस्तक्षेप करना चाहता था। उसे यूनान का विद्रोह उपयुक्त अवसर प्रतीत हुआ। उसे तुर्की के साथ कूटनीतिक संबंध तोड़ लिये और युद्ध की तैयारी करने लगा।

लेकिन इसी समय दो ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं घटी जिसके कारण स्थिति बिल्कुल बदल गई। पहली घटना थी कि 1822 में कैसलरे के स्थान पर जॉर्ज कैनिंग इंग्लैंड का विदेश मंत्री बना जो प्रारंभ में हस्तक्षेप की नीति का समर्थक था लेकिन बाद की घटनाओं के कारण उसे इस नीति का त्याग करना पड़ा और इंग्लैंड के कदम से अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसके कारण ऑस्ट्रिया और रूस को अपनी मनोवृति बदलनी पड़ी। इसी मध्य रूस के जार सिकंदर की मृत्यु हो गई और उसका भाई जार निकोलस गद्दी पर बैठा। 1826 में इंग्लैंड और रूस ने तुर्की साम्राज्य के समक्ष या प्रस्ताव रखा की वायुयान को तुर्की साम्राज्य के अंतर्गत एक राज्य स्वीकार कर ले लेकिन सुल्तान ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया इसी समय नेबोरिनों के बंदरगाह पर तुर्की जहाजी बेड़े और फ्रांस तथा इंग्लैंड के जहाजी बेड़ो के मध्य साधारण सी मुठभेड़ हो गई जिसमें तुर्की जहाजी बेड़ा नष्ट हो गया। फलस्वरुप यूरोपीय युद्ध की पूर्ण संभावना दिखाई देने लगी।

इसी समय इण्लैण्ड और फ्रांस ने अपने जहाजी बेड़े वापस बुला लियें। लेकिन रूस भागने वाला नहीं था। तुर्की रूस का मुकाबला नहीं कर सका। विवश होकर 14 सितम्बर 1829 को सुल्तान को रूस के साथ 'एड्रियानोपोल की सन्धि करनी पड़ी और यूनान को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई।

इस प्रकार स्वतन्त्र राज्य के रूप में यूनान का प्रादूभवि विमना कांग्रेस के बाद यूरोप की महत्वपूर्ण घटना थी। यूनानी विद्रोह ने यह दिखला दिया कि राष्ट्रीयता की भावना किसी के दबाये दब नहीं सकती।

1.3.4 बोध प्रश्न

1. लगभग दस पक्तियों में पूर्वी समस्या के विषय में बताइये।
2. निम्न प्रश्नों पर सही/गलत के चिन्ह लगाइये।
   i. तुर्की साम्राज्य को यूरोप का मरीज कहा जाता था। ( )
   ii. यूनान का स्वतन्त्रता संग्राम अन्य राज्यों के लिए उदाहरण बना।( )
   iii. तुर्की साम्राज्य में सर्वाधिक रूचि ब्रिटेन की थी। ( )

1.4 पूर्वी समस्या का अन्तराष्ट्रीय पहलू: क्रीमिया युद्ध

क्रीमिया युद्ध के कारण—

ऐड्रियो नोपल की संधि के बाद मेहमत अली का विद्रोह पूर्वी समस्या की महत्वपूर्ण घटना थी। मोहम्मद अली मिस्त्र का गवर्नर था। (मिस्र तुर्की साम्राज्य का एक प्रदेश था) लेकिन वह स्वतंत्र शासक को की भांति कार्य कर रहा था। यूनानी विद्रोह के समय उसने तुर्की सुल्तान की बड़ी सहायता की थी और वह इनाम के तौर पर सीरिया चाहता था जो उसे नहीं मिला। 1831 में वह कुस्ततुनिया की ओर बढ़ने लगा जिसे रोकने के लिए तुर्की सुल्तान ने यूरोपीय सैनिक सहायता की मांग की जिसे रूस ने तुरंत स्वीकार कर लिया। रूस की सेना तुर्की साम्राज्य की ओर बढ़ने लगी जिसे देख यूरोप में बेचौनी फैल गई। रूसी सेना को वापस भेजने के लिए यूरोपीय शक्ति में तुर्की सुल्तान पर दबाव डाला कि वह मेहमत अली के साथ समझौता कर लें। तुर्की सुल्तान ने इस अनुरोध को मान लिया और सीरिया अहमद अली को मिल गया। इसके बाद रूस का प्रभाव तुर्की साम्राज्य पर बढ़ने लगा जिसे देख कर इंग्लैंड चिंतित होने लगा। उसने पूर्वी समस्याओं पर विचार करने के लिए लंदन में

एक सम्मेलन 1840 में बुलवाया। जहां सभी यूरोपीय शक्तियों ने स्वीकार किया कि तुर्की साम्राज्य का अस्तित्व बने रहना चाहिए।

जेरूसलम की समस्या–

ईसाइयों का पवित्र स्थान जेरूसलम तुर्की साम्राज्य में पड़ता था वहां रोमन और ग्रीक चर्च के सन्यासी रहते थे। तुर्की साम्राज्य के शासक उनके साथ क्रूरता पूर्वक व्यवहार करता था। रोमन और ग्रीक सन्यासी एक दूसरे को अपना प्रतिद्वन्दी समझते थे।

दूसरी ओर 1815 में नेपोलियन को हराने में रूस का बड़ा हाथ था। नेपोलियन का विचार था कि यदि जेरूसलम की लड़ाई छिड़ गई और रूस को हरा दिया जाए तो पूरे यूरोप में नेपोलियन का रोब पुनः छा जायेगा। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर फ्रांस ने उग्र नीति अपनायी। इस समस्या को लेकर लगभग तीन वर्षों तक कूटनीतिक तनाव चलाता रहा। रूस इस मौके का लाभ उठाना चाहता था अतः रूस ने 1853 में तुर्की सरकार को चेतावनी देकर तुर्की साम्राज्य में रहने वाले सभी ईसाइयों के संरक्षण का अधिकार मांगा जिसे स्वीकार करने का अर्थ था तुर्की के आंतरिक मामलों में रूसी हस्तक्षेप को स्वीकार करना। तुर्की सरकार ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

प्रस्ताव अस्वीकार हो जाने के बाद 1853 में रूसी सी तुर्की साम्राज्य में घुस गई तथा भोल्डेविया और बोलेशिया के प्रान्तों पर अधिकार कर लिया। जिससे स्थिति गंभीर हो गई। इंग्लैंड और फ्रांस ने तुर्की सुल्तान को भड़काना शुरू कर दिया और उसे सहायता देने का वचन भी दिया। जिससे प्रभावित होकर तुर्की सुल्तान ने रूस ने भोल्डेविया और बोलेशिया प्रांत खाली करने को कहा जिसे रूस साम्राज्य (जार निकोलस) ने मानने से इन्कार कर दिया।

इस पर 27 फरवरी 1864 को इंग्लैंड और फ्रांस ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह क्रीमिया युद्ध था जिसमें एक तरफ इंग्लैंड फ्रांस और तुर्की तथा दूसरी ओर रूस अकेला था। हालांकि रूस को ऑस्ट्रिया से सहायता की उम्मीद थी लेकिन ऑस्ट्रिया ने युद्ध से तटस्थता की घोषणा कर दी। इसी प्रकार प्रशा भी इस युद्ध तटस्थ रहा।

युद्ध का आरंभ और अंत–

क्रीमिया युद्ध लगभग 2 वर्षों तक चला और इसमें दोनों पक्षों की जनधन की अपार हनी हानि हुई। रस अकेले फ्रांस इंग्लैंड तुर्की और साड़ियां से मुकाबला नहीं कर सकता था फर्स्ट ऑफ 1855 में जार प्रथम निकोलस को की मृत्यु के बाद सिकंदर जार बना मैं जार में युद्ध को जारी रखना बेकार समझा और ऑस्ट्रिया की सहायता से युद्ध बंद हो जाये हो गया और संधि के लिए पेरिस में तैयारी होनी लगी।

1.4.1 पेरिस की सन्धि

पेरिस की संधि क्रम में युद्ध का अंत पहले संधि से 30 मार्च 1865 में हुआ। जिसकी मुख्य शर्ते थी –

- यूरोपीय राजू ने तुर्की की प्रादेशिक अखंडता और स्वतंत्रता को बनाए रखने का वादा किया।
- इसके बदले तुर्की सुल्तान ने अपनी इसाई प्रजा की स्थिति को सुधारने का वचन दिया।

- सुल्तान ने अपनी इसाई प्रजा के विशेषाधिकार की पुनः पुष्टि की तथा रूस ने तुर्की इसाई प्रजा के संरक्षण का अधिकार त्याग दिया।

- भोल्डेविया और वेलेशिया पर रूस का संरक्षण समाप्त कर दिया गया।

- सर्बिया की स्वतंत्रता मान ली गई।

- डैन्यूब नदी व्यापार के लिए सभी यूरोपीय राज्यों के लिए रोक खोल दी गई।

- कार्स का प्रदेश तुर्की को तथा क्रीमिया रूस की वापस मिल गया।

- काला सागर को तटस्थ घोषित कर दिया गया। किसी भी देश को यह अधिकार नहीं रहा कि वह काला सागर से युद्ध पोट ला सके।

1.4.2 क्रीमिया युद्ध के महत्व और परिणाम

क्रीमिया युद्ध वियना–कांग्रेस के बाद एक महत्वपूर्ण घटना थी फिर भी इसे व्यर्थ का युद्ध कहा जाता है इस युद्ध के कुछ तत्कालीन और कुछ दूरगामी परिणाम हुए।

- रूस बहुत दिनों से तुर्की साम्राज्य को हड़पने का प्रयास कर रहा था। उसके मंसूबों पर रोक लगा दी गई। कुछ समय के लिए रूस की तुर्की योजना थप्पड़ गई।

- दूसरी और तुर्की जो यूरोप का मरीज बना हुआ था पेरिस–संधि ने उसकी प्रादेशिक अखंडता की गारंटी देकर कुछ समय के लिए पुनर्जीवित कर दिया।

- लुई नेपोलियन को सुअवसर प्राप्त हुआ और सारे यूरोप में उसकी धाक जम गई। यह बात ठीक है कि इस युद्ध से रूस का प्रचार रुक गया और तुर्की में नए जीवन का संचार हुआ लेकिन जो भी तत्कालीन परिणाम हुए वह आगे चलकर अस्थाई साबित हुए। जैसे सर्बिया की स्वतंत्रता।

- अन्य पराधीन देश के लिए प्रेरणा स्रोत बनी। क्रीमिया युद्ध का दूसरा मुख्य लक्ष्य रूस को निर्बल बनाना था लेकिन रूस मौके की तक में था जैसे ही उसे अवसर मिला वह नए जोश के साथ पूर्वी समस्याओं पर टूट पड़ा। इस प्रकार जिन मुख्य उद्देश्य को ध्यान में रखकर या युद्ध लड़ा गया उसी दृष्टि से ही या व्यर्थ साबित हुआ।

लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से इस युद्ध ने इटली और जर्मनी के एकीकरण, रूस की राजनीति, बालकन प्रायद्वीप के पुनर्निर्माण एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। सच तो यह है कि 19वीं शताब्दी को आने वाली घटनाएं घटनाओं का क्रीमिया युद्ध का ऐसा प्रभाव पड़ा की 1815 में वियना में जिस महल का निर्माण किया गया था उसकी नींव डाल गई। इसलिए क्रीमिया युद्ध के दूरगामी परिणामों को समझना आवश्यक है।

क्रीमिया युद्ध और इटली का एकीकरण

क्रीमिया युद्ध में इटली इसलिए शामिल हुआ कि वह विश्व को बतला देना चाहता था कि इटली के लोग किसी से कम नहीं है और उनको स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। इसके अतिरिक्त कैबूर पेरिस सम्मेलन में संपूर्ण इटली का प्रतिनिधि बनकर गया और इटली की

दुर्दशा का चित्र सबके सामने रखा जिसने इटली के एकीकरण में काफी सहायता मिली। इस प्रकार क्रीमिया के कीचड़ से नवीन इटली का निर्माण हुआ।

जर्मनी पर प्रभाव

जर्मनी की एकता के प्रयत्न पर क्रीमिया–युद्ध का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा 1966 में जब ऑस्ट्रिया और प्रशा के बीच जर्मनी एकीकरण को लेकर युद्ध शुरू हुआ तो रूस की सहानुभूति प्रशा को मिली। क्रीमिया युद्ध में आस्ट्रिया के रुख के कारण रूस उनसे रुष्ट हो गया और प्रशा की ओर झुकने लगा। जब 1866 में प्रशा और आस्ट्रिया में युद्ध छिड़ा तो रूस उससे तटस्थ रहा। आस्ट्रिया अकेला पड़ गया और प्रशा ने आसानी से उसे परास्त कर दिया। इसी प्रकार जर्मनी के एकीकरण में क्रीमिया युद्ध महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

रूस की राजनीति पर प्रभाव

केटेल्बी का कहना है कि क्रीमिया का युद्ध सामान्य अर्थ में यूरोपीय इतिहास का सबसे युगांतर वादी युद्ध था पर रूस में या तथ्या विशेष रूप से लागू होता है।

रूस एक विशाल देश था। उसके पास अपार सैन्य शक्ति थी। फिर भी वह युद्ध में हार गया यह सरकार की कमजोरी थी। अतः शासन का विरोध होने लगा। अतः जार अलेक्जेण्डर के शासनकाल में सुधारो का कार्य बड़े पैमाने पर होने लगा और रूस ने नए युग में प्रवेश किया था रूस का पूर्रनिर्माण शुरू हुआ।

बाल्कन ने राज्य पर प्रभाव

क्रीमिया युद्ध के बाद सर्बिया को स्वतंत्रता मिली थी। बाल्कन प्रायद्वीपों के राज्य यूनान और सर्बिया से प्रेरणा लेकर स्वतन्त्रता की मॉग करने लगे। अतः बाल्कन राज्यों के नवनिर्माण की दिशा में क्रीमिया–युद्ध एक महत्वपूर्ण घटना थी।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक पर प्रभाव

क्रीमिया युद्ध का प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर भी पड़ा। रूस को अनुभव हुआ कि इंग्लैंड के विरोध के कारण तुर्की साम्राज्य में उसकी दाल नहीं गलेगी। अंतः रूस बाल्कन क्षेत्र से अपना साम्राज्यवादी जाल समेटने लगा और पूर्व एशिया को अपनी गतिविधि का केंद्र बना लिया। इसके फलस्वरुप मंचूरिया, कोरिया, मंगोलिया, चीन, जापान आदि देशों काफी जटिल हो गयी। इसके कारण एक नवीन प्रश्न का सूत्रपात हुआ जिसे 'सुइर पूर्वीय एशिया की समस्या' कहते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर इस युद्ध का प्रभाव दूसरी तरफ से भी पड़ा। नए–नए आधुनिक अस्त्र–शस्त्र और आधुनिक ढंग से सैनिकों को सुसज्जित करना इस युग की विशेषता थी। इंग्लैंड आगे आगे इस दोनों देशों में सैनिक संगठनों में परिवर्तन हुआ जिससे जिसका असर अन्य यूरोपियन देशों पर भी पड़ा।

अंतर्राष्ट्रीय विधि पर प्रभाव

क्रीमिया–युद्ध के समय अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के निर्माण में परिवर्तन करने की आवश्यकता महसूस हुई इसलिए पेरिस सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय निजी से संबंधित उनके नियमों का निर्माण हुआ।इस युद्ध में लाखों सैनिक मारे गये तथा लाखों घायल हुए जिनकी देखभाल करना मुश्किल कार्य था। ऐसी स्थिति में 1964 में अंतर्राष्ट्रीय रेड क्रॉस की स्थापना की गई।

इस प्रकार क्रीमिया युद्ध अनेक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण घटना थी। लंबे समय बाद इंग्लैंड और फ्रांस एक पक्ष में होकर लड़े। आधुनिक युग में या पहला अवसर था, जिसमें स्त्रियों ने फ्लोरेंस नाइटेंगल के नेतृत्व में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

1.4.3 बौद्ध प्रश्न–2

प्रश्न 1. नंबर एक लगभग 10 पंक्तियों में क्रीमिया–युद्ध के महत्व का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2 सही गलत का चिन्ह लगाए।

a) पेरिस की संधि में तुर्की साम्राज्य की अखंडता को बनाए रखने का प्रयास किया गया।( )

b) सविया को स्वतंत्र मान लिया गया।( )

c) इटली के काकीकरण पर क्रीमिया–युद्ध का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा।( )

d) क्रीमिया युद्ध के बाद रूस के मंसूबों पर रोक लगा दी गई।( )

पूर्वी समस्या की जटिलता रूसी तुर्की युद्ध 1870–1878

पेरिस संधि के बाद आशा आशा की गई थी कि तुर्की सुल्तान अपनी इसी प्रजा को संतुष्ट रखेगा लेकिन सुल्तान ने अपने वचनों का पालन नहीं किया।

1875 में तुर्की शासन के विरोध में वह सीनियर और है गेरिया यून ने विद्रोह का झंडा उठा लिया। या विद्रोह केवल बोस्निया और क्षेत्र हर्जेगोविना तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि यह एक ऐसी चिंगारी थी जो समूचे बालकन ने प्रायद्वीप को परावर्तित करने पर तुला था विद्रोह की आग फैलने लगी और बुल्गारिया में भी विद्रोह हो गया। करके सुल्तान के विरुद्ध एक के बाद एक राज्य विद्रोह करता जा रहा था फर्स्ट आफ तुर्की सरकार ने बड़ी निर्दयतापूर्ण बुल्गारिया विद्रोह दबा दिया। जब बल्केरिया पर हुई भयंकर अत्याचारों का समाचार यूरोप पहुंचा तो पूरे यूरोप में खलबली मच गई। इंग्लैंड के सामने बुल्गारिया का अत्याचार नहीं करना भारतीय भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा नाच रही थी इंग्लैंड का शत्रु तुर्की नहीं बल्कि रूस था जो भारत की ओर बढ़ने का प्रयास कर रहा था।

रूसी प्रतिक्रिया

बुल्गेरिया अत्याचारों पर रूस ने सार्वजनिक रूप से या घोषणा की कि अगर यूरोप के महान राष्ट्र संयुक्त रूप से बुल्गारिया की रक्षा नहीं करेंगे तो बाध्या होकर रूस को अकेले ही कोई कदम उठाना पड़ेगा।

अतः अप्रैल 1870 में रूस ने तुर्की से कुछ मांगे की। तुर्की को विश्वास था कि ब्रिटेन उसकी मदद अवश्य करेगा अतः तुर्की ने रूस की मांगे अस्वीकार कर दी। इस पर 24 अप्रैल 1877 में रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध शुरू कर दिया। रूस की सैन्य शक्ति के सामने तुर्की एक साधारण शक्ति थी। अतः ब्रिटेन और ऑस्ट्रिया ने रूस का विरोध करना प्रारंभ किया और ऐसी स्थिति रूस ने तुर्की के संधि करना ही ठीक समझा। 3 मार्च 1878 में को स्टीफनों की संधि हुई जिसकी मुख्य शर्ते निम्न थी–

- सार्बिया, रूमानिया, मान्टिनिग्रों को पूर्ण स्वतंत्रता दी गई।
- बोस्निया, हर्जेगोबिना और अर्मोनिया में शासन सुधार किया गया।
- एक विशाल स्वतंत्र बुल्गेरिया का निर्माण हो।
- रूस को आर्मेनिया के कुछ प्रदेश तथा बोस्निया और दोब्रुदजा का विस्तार भूभाग मिले।
- तुर्की ने हरजानें के रूप में बहुत बड़ी धनराशि प्रदान करने का वादा किया।

इस संधि का अर्थ था कि यूरोप में तुर्की साम्राज्य का विनाश।

रूस और बुल्गारिया को छोड़कर कोई भी सनस्टीफनों की संधि से संतुष्ट नहीं था। सबसे अधिक रुष्ट इंग्लैंड था क्योंकि इस संधि से काला सागर पर रूस का एकाधिपत्य हो गया था। ऑस्ट्रिया और इंग्लैंड इस बात पर सहमत थे कि सभी यूरोपिय राज्यों की दिलचस्पी तुर्की साम्राज्य में है अतः एक अकेले देश रूस के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। अतः पूरे यूरोप में इस संधि पर पुनर्विचार के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की मांग होने लगी।

बर्लिन सम्मेलन/बर्लिन व्यवस्था

इस समय तक यूरोपीय रंगमंच पर संयुक्त जर्मनी का प्रादुर्भाव हो चुका था। विश्व में जर्मनी की महत्ता सिद्ध करने के लिए बिस्मार्क के प्रस्ताव रखा की प्रस्तावित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बर्लिन में ही हो। बिस्मार्क को सम्मेलन का सभापति नियुक्त किया गया है, नियुक्त किया गया। लेकिन पूरे सम्मेलन में सिर्फ इंग्लैंड का दबदबा (विशेष कर डिजरैली) बना रहा। 13 जुलाई 1878 को एक नई संधि पर हस्ताक्षर किए गये। यह बर्लिन की संधि थी। इस संधि के अनुसार निम्न व्यवस्थाएं की गईः–

- रूस को सनस्टीफानों की संधि से काफी लाभ हुआ था, इसमें कमी कर दी गई रूमानिया ने बेसरेबिया का प्रदेश लेकर रूस को दे दिया। इसके अतिरिक्त आर्नेनिया का कुछ हिस्सा भी रूस को प्राप्त हुआ।
- रूमानिया की स्वतंत्रता स्वीकार कर ली गयी। दोब्रुदजा का प्रदेश जो सनस्टीफानों की संधि द्वारा रूस को दे दिया गया था, अब रूमानिया को प्रदान कर दिया गया।
- ऑस्ट्रिया को बोस्निया और हर्जेगोविया के प्रदेश प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त सर्बिया और मान्टिनिग्रो के बीच स्थित नोविबाजार नामक स्थान पर सेना रखने का अधिकार भी उसे मिला।
- इंग्लैंड को साइप्रस का अधिकार मिला।
- सर्बिया और मान्टिनिग्रो को पूर्णतया स्वाधीन राज्यों के रूप में स्वीकृत कर लिया गया।
- बुल्गेरिया की स्वाधीनता मान ली गई पर उसे बहुत छोटा सा राज्य बना दिया गया।
- सनस्टीफानों की संधि के अनुसर रूमानिया बुल्गेरिया के अंतरगत था जैसे इस संधि से तुर्की सुल्तान को सौप दिया गया। लेकिन इसके शासन के लिए इसाई गवर्नर की व्यवस्था की व्यवस्था की गई है।
- तुर्की की अधीनता में मैसिडोनिया तक के प्रदेश रखे गये।

बर्लिन सम्मेलन में फ्रांस ने टयूनिस, इटली ने अलबेनिया पर ट्रिपोली एवं यूनान ने क्रीट, एपिरस, थेसली और मैसिडोनिया पर दावा किया पर इस पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सका। लेकिन एक बात थी कि जर्मनी ने किसी भी प्रदेश पर दावा प्रस्तुत नहीं किया।

1.5.2 बर्लिन व्यवस्था का मूल्यांकन

यूरोप के आधुनिक इतिहास में बर्लिन संधि का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन कई करणों से यह सम्मेलन अपनी चेष्टाओं में सफल नहीं हो सका। इससे उसका परिणाम के फल स्वरुप 1912 और 1913 में बाल्कन युद्ध शुरू हो गया और अन्ततोगत्वा प्रथम विश्व

युद्ध। बर्लिन सम्मेलन का एक उद्देश्य यूरोपीय शक्ति संतुलन को बनाएं रखना था साथ ही साथ जर्जर और लड़खड़ाअति तुर्की सरकार को जीवित रखना था क्योंकि तुर्की साम्राज्य के पतन से एक राजनीतिक शून्यता आने का भाय था। जो इंग्लैंड नहीं चाहता था। ऐसे होने पर रूस को विस्तार का स्वर्ण अवसर मिल जाता।

राष्ट्रीयता के सिद्धांत की पूर्ण उपेक्षा बर्लिन सम्मेलन की दूसरी विशेषता थी। शक्ति संरक्षण का सिद्धांत यूरोप के राजनीतिज्ञ के सामने इस तरह नचता रहा कि वह इस बात को भूल ही गए कि बाल्कन ने प्रायद्वीपों की एकमात्र समस्या राष्ट्रीयता ही है। सर्बिया, मान्टिनिग्रो, रूमानिया और बुल्गेरिया को स्वाधीनता स्वीकार करना राष्ट्रीयता के सिद्धांत के अनुकूल था। लेकिन ब्रिटेन द्वारा साइप्रस ऑस्ट्रिया द्वारा बोस्निया और हर्जेगोविया पर अधिपत्य करना राष्ट्रीयता के सिद्धांतों के प्रतिकूल था।

तुर्की साम्राज्य को सर्वनाश से बचा लेना बर्लिन सम्मेलन के सबसे बड़ी सफलता बतायी गई। यही सही है कि इस संधि द्वारा लड़खड़ाता तुर्की कुछ समय के लिए सम्भल गया लेकिन जनसंख्या की दृष्टि से तुर्की आधा हो गया। बर्लिन संधि द्वारा तुर्की को कोई नवजीवन प्राप्त नहीं हुआ।

बर्लिन सम्मेलन में तुर्की साम्राज्य था बाल्कन ने प्रायद्वीपों की समस्याओं का कोई समाधान नहीं हो सका। यह समस्या और जटिल हो गई। वास्तव में या भविष्य में क्षेत्र में होने वाले संकटों की जड़ सिद्ध हुई। बर्लिन संधि का मुख्य काम ब्रहदत बुल्गारिया का नष्ट करना था। जिसका निर्माण सनस्टीफानों की संधि के द्वारा हुआ था। मैसिडोनिया की तुर्की साम्राज्य के अधीन करने से 1912 में प्रथम बाल्कन युद्ध और 1913 को द्वितीय बाल्कन युद्ध बुल्गेरिया के क्षेत्रफल को सीमित करने का प्रत्यक्ष परिणाम था।

बर्लिन की संधि के अनुसार में रूमानिया, आर्मेनिया, और क्रीट पर तुर्की सुल्तान का कायम रहा लेकिन तुर्की सुल्तान ने अपनी इसाई प्रजा की कोई परवाह नहीं की। तुर्की साम्राज्य के अधीनस्थ राज्य तथा बाल्कन के पराधीन राज्य अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने को व्याकुल हो रहे थे और उनके राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ता जा रहा था।

बर्लिन संधि का प्रभाव इतना व्यापक था, कि संसार के अन्य क्षेत्र भी इससे अछूत नहीं रह सके। इस संधि ने रूस की प्रसार नीति पर एक बहुत बड़ी रुकावट लगा दी। रूस ने अनुभव किया यहां उसका कोई भविष्य नहीं है अंतः उसने अपना कूटनीतिक जाल क्षेत्र से समेट कर पूर्वी एशिया में ले गया जहां चीन और अफगानिस्तान में उसे अपना दांव खेलना प्रारंभ किया।

इस संधि से जर्मनी और तुर्की के संबंध लगातार प्रगाड़ होते गए वहीं रूस के जर्मनी से संबंध बिगड़ गए। इस प्रकार बर्लिन सम्मेलन रूस जर्मनी के खिंचाव और ऑस्ट्रिया–जर्मनी के मेल जोल की नीव बनी जिसके कारण आगे चलकर यूरोप दो गुटों में बट गया।

बोध प्रश्न–3

प्रश्न 1 बरेली व्यवस्था का मूल्यांकन धांश पर 10 पंक्तियों में कीजिए।

प्रश्न 2 निम्न प्रश्नों पर सही गलत के निशान लगाइए।

i. यूरोप के सभी देश सेनस्टेफनो की संधि से प्रसन्न थे।( )

ii. बर्लिन सम्मेलन के बाद जर्मनी को तुर्की साम्राज्य का एक बड़ा हिस्सा प्राप्त हुआ।( )

iii. बर्लिन सम्मेलन ने बाल्कन प्रायद्वीपों की समस्या का समाधान कर दिया।( )

iv. बुल्गारिया का राज्य सीमित कर दिया गया।( )

सारांश

पूर्वी समस्या जिसे यूरोप की भयानक समस्याओं के रूप में जाना जाता है। जिससे उस समय की यूरोपीय राजनीति प्रभावित रही। बर्लिन सम्मेलन इस समस्या के समाधान हेतु आयोजित किया गया था। इसमें संदेह नहीं है कि बर्लिन संधि में अनेक दोष थे। लेकिन बर्लिन व्यवस्था का पुनर्मूल्यांकन करते समय हमें उन तत्कालीन परिस्थितियों पर भी ध्यान देना होगा जिससे बर्लिन के राजनेता घिरे थे, क्योंकि यथार्थ में उनके प्रति न्याय करने के लिए प्रत्येक स्थिति को उसे रूप में देखना चाहिए जिस रूप में वह तत्कालीन राजनीतिज्ञों के समक्ष उपस्थित हुई थी। वास्तव में बर्लिन व्यवस्था अपने शांति के उद्देश्य को अवश्य ही पूरा किया और एक पीढ़ी तक बड़े राज्यों के बीच को युद्ध नहीं हुआ।

शब्दावली

1 **बालकान प्रायद्वीपः** दक्षिण पूर्वी यूरोप का एक क्षेत्र जो तीन ओर से समुद्र से गिरा है। इसके पूर्व में काला सागर दक्षिण में भूमध्यसागर और पश्चिम में एजिएन इन सागर है तथा उत्तर में खाना कूफा और देबू नदियां बहती हैं। इसमें अल्युमिनियम यूनान, बुल्गारिया, यूगोस्लाविया और रोमानिया के कुछ भाग भी थे कुछ भाग भी शामिल है।

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. a) ✓ b) ✓ c) × d) ✓
2. a) ✓ b) ✓ c) × d) ✓
3. a) × b) × c) × d) ✓

इकाई 2 अफ्रीका का बंटवारा

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 अफ्रीका का बंटवारा

2.3.1 अफ्रीका की ओर झुकाव के कारण

2.3.2 अफ्रीका का विभाजन और यूरोपीय देशों की भूमिका

2.3.3 बोध प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 बोध प्रश्न के उत्तर

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में अफ्रीका पर अपना दावा प्रस्तुत करने में कौन–कौन यूरोपीय देश अपनी रुचि दिखा रहे थे तथा अफ्रीका में ज्यादा से ज्यादा भाग उन्हें प्राप्त हो इसके लिए उन्होंने जो नीतियां बनाई उसका विवरण दिया जाएगा दिया गया है।

2.2 प्रस्तावना

भूमध्य सागर के दक्षिण में स्थित अफ्रीका महादेश 19वीं शताब्दी के पूर्व अन्य महादेश (Dark Continent) के नाम से जाना जाता था। इसके निवासी काले रंग वाले हब्शी (नीग्रा) लोग थे और यह विशाल महादेश जंगलों और पहाड़ों से भरा पड़ा था। यूरोपीय नागरिक इसके पश्चिम किनारे से होते हुए सुइर दक्षिण तक जाते थे। किंतु तटवर्ती क्षेत्र को छोड़कर भीतर जाने का साहस किसी किसी को ही होता था। परिणाम स्वरूप इस देश के कुछ तटवर्ती क्षेत्र के नाम जैसे गोल्ड कोस्ट, आइवरी कोस्ट या स्लेव कोस्ट आदि नाम रखे गए। लेकिन वास्तविक रूप से यूरोपीयों को इस देश की जानकारी का अभाव था। और ना ही वे अफ्रीका महाद्वीप के आंतरिक समृद्धि से अवगत थे। व्यापारी वर्ग भी इस महाद्वीप के संबंध में केवल इतना ही जानते थे कि वह यहां से हब्शीयों को पकड़ कर ले जाते थे और दसों के रूप में उन्हें अमेरिकी किसानों को बेच देते थे। अफ्रीका के इस अंध महाद्वीप में यूरोपीय के प्रविष्टि ना होने के निम्न कारण थेः–

- अफ्रीका का समुद्री किनारा समतल नहीं था और अच्छे बंदरगाहों का अभाव था जिससे यूरोपियन वहां जाने का साहस नहीं कर पाते थे।
- अफ्रीका की जलवायु उत्तम नहीं थी। अफ्रीका के उत्तर में विशाल सहारा का विशाल रेगिस्तान था। दक्षिण भाग भयानक जंगलों से गिरा था। मिस्र, टूयूनिय, अल्जीरिया

और मोरक्को के अतिरिक्त अफ्रीका के अन्य प्रदेश उपजाऊ नहीं थे।

- अफ्रीका में अनेक पहाड़ और दलदल जैसे स्थान थे। अनेक नदियां और झरने इन भौगोलिक कठिनाइयों को बढ़ा रहे थे।
- हब्शी जिन्हें यूरोपिय लोग पकड़ कर ले जाते थे। वह विदेशियों से घृणा करते थे। अतः उन्होंने आपस में किसी भी प्रकार के संबंध स्थापित नहीं किया।

2.3 अफ्रीका का बंटवारा

2.3.1 अफ्रीका की ओर झुकाव के कारण

धीरे–धीरे वर्तमान स्थिति में परिवर्तन आने आना प्रारंभ हुआ और यूरोप के लोग अफ्रीका महाद्वीप की ओर आकर्षित होने लगे। जिसके लिए निम्न परिस्थितियां उत्तरदाई थीः–

- सर्वप्रथम नेपोलियन ने अफ्रीका के महत्व को समझा और अंग्रेजों को अप्रत्यक्ष युद्ध में हारने के उद्देश्य से मिस्र पर आक्रमण किया। वास्तव में मिस्र और सीरिया होकर जो स्थल मार्ग था उसे पर अधिकार कर वह अंग्रेजों के पूर्वी साम्राज्य को को इकहरा उत्पन्न करना चाहता था। इंग्लैंड और फ्रांस के युद्ध के कारण यूरोप के राष्ट्रों का ध्यान भी अफ्रीका को की ओर आकर्षित हुआ।
- यूरोपीय देश अपने–अपने औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना करना चाहते थे। जिसके लिए उन्हें नये नये स्थान की तलाश थी। इसलिए उनका ध्यान अफ्रीका की ओर गया।
- अफ्रीका में हीरो व अन्य बहुमूल्य पत्थरों की खान थी। इसलिए यूरोप के विभिन्न राष्ट्र अपना अधिकार स्थापित कर, इस धनसंपदा को हस्तगत करना चाह रहे थे।
- उस समय सैनिक राष्ट्रवाद की भावना का निरंतर विकास हो रहा था। इसलिए प्रत्येक राज्य अपने आत्म–सम्मान और गौरव की वृद्धि के लिए उपनिवेशों की स्थापना को ललायित था।
- यूरोप के युद्ध धर्म प्रचारक भी अफ्रीका के इस अंत महाद्वीप में अपने धर्म संस्कृति का प्रचार करने के इच्छुक थे।
- यूरोप का प्रत्येक देश अपनी अपनी सैनिक शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए उपनिवेश निवेदक दौड़ में भाग लेने का इच्छुक था।
- अफ्रीका की खोज में धर्म प्राचार्य को ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस संदर्भ में लिविंगस्टन स्टालिन स्टेनली स्पोक वी ग्रांट्स आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन धर्म प्रचारकों एवं अन्य शाह कटवाओं के माध्यम से ही यूरोपियन लोग को अफ्रीका की आंतरिक भौगोलिक स्थिति और धन संपदा का ज्ञान हुआ और यूरोप का प्रत्येक देश अफ्रीका में अपने उपनिवेश स्थापित करने का प्रयास करने लगा।

2.3.2 अफ्रीका का विभाजन और यूरोपियन देशों की भूमिका

अफ्रीका का विभाजन यूरोप के इतिहास की एक अत्यंत रोमांचकारी घटना मानी जाती है। यद्यपि विभाजन कर्ता विभिन्न राष्ट्रों में आपस में अनेक मतभेद थे किंतु फिर भी बिना युद्ध लड़े इस कार्य को अत्यंत शीघ्रता पूर्ण एवं शांतिपूर्ण ढंग से पूर्ण कर लिया गया। 1876 में बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड द्वितीय ने ब्रुसेल्स में यूरोप के रईसों की एक सभा

का आयोजन किया। किंतु इस सम्मेलन में उच्च नैतिक स्तर को अधिक लंबे समय तक बनाई नहीं रखा जा सका और शीघ्र ही प्रत्येक देश ने अपने–अपने स्वार्थ के अनुरूप के कार्य करना आरंभ कर दिया।

इंग्लैंड फ्रांस जर्मनी और इटली जैसे देशों में अफ्रीका में प्रवेश प्राप्त करने के लिए वहाँ की असभय जनता को सभ्य बनाना और ईसाई धर्म का प्रचार करना है इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों ने अफ्रीका की लूट का कार्य प्रारंभ किया।

1884 का बर्लिन सम्मेलन

यूरोप का प्रत्येक राष्ट्र अफ्रीका में अपने उपनिवेश स्थापित करना चाहता था इसलिए उनमें परस्पर मतभेदों का जन्म हुआ। अतः बर्लिन में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया जिसमें इन मतभेदों को दूर किया जा सके तथा जर्मनी, इंग्लैंड और फ्रांस की सीमा संबंधी विवादों को सुलझाया जा सके। यह सम्मेलन 18 नवंबर 1884 से फरवरी 1885 तक चला। अफ्रीका की लूट में सबसे अधिक लाभ इंग्लैंड को हुआ। उसके अत्यधिक विस्तृत साम्राज्य में केप ऑफ गुडहोप, नेटाल, ट्रांसवाला और ऑरेंजनदी का नजदीकी क्षेत्र ऐडेशिया, मिस्र, सूडान का कुछ भाग ब्रिटिश सोभालीलैंड, नाइजीरिया, गैम्बिया, गोल्ड कोस्ट तथा सियरा–लियोन सम्मिलित थे।

मिस्र पर इंग्लैंड का नियंत्रण

सन् 1798 में नेपोलियन ने मिस्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। लेकिन नील नदी के युद्ध में उसकी पराजय के बाद वहां उसका प्रभाव समाप्त हो गया और इंग्लैंड का मिस्र पर प्रभुत्व स्थापित हो गया।

मिस्र पर किसी अन्य देश का नियंत्रण स्थापित होने का अर्थ था, इंग्लैंड का भारतीय साम्राज्य को खतरा। प्रारम्भ में मिस्र पर तुर्की साम्राज्य का एक अंग था। 1811 में मिस्र के गवर्नर शासक मोहम्मद अली ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। उसके मृत्यु के बाद उसका पौत्र स्माइल पाशा 1863 में गाद्दी पर बैठा। वह एक अत्यंत अपव्यायी व्यक्ति था। उसके समय मिस्र का शाही कोष लगभग खाली हो गया था तथा पशा को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इंग्लैंड और फ्रांस से बहुत अधिक धनऋण लेना पड़ा। अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए पाशा ने स्वेज नहर के अपने हिस्से को इंग्लैंड को बेच दिया। 1876 में मिस्र में एक कमेटी की स्थापना की गई जिसे मिस्र के आय और व्यय पर इंग्लैंड व फ्रांस का प्रभुत्व स्थापित हो गया। शीघ्र ही स्माइल पशा के लिए इंग्लैंड और फ्रांस का हस्तक्षेप सहन करना मुश्किल हो गया। इंग्लैंड और फ्रांस ने तुर्की के सुल्तान से पाशा को गवर्नर के पद से हटाने के लिए दबाव डाला। पशा के स्थान पर उसके पुत्र तौहीफ को मिस्र का गवर्नर नियुक्त किया गया।

अरबी पाशा का राष्ट्रीय आंदोलन

मिस्र में द्वैध शासन की स्थापना के बाद देश की दशा अत्यंत सोचनीय हो गई थी। मिस्रवासियों की मांग थी कि बाहरी देशों को मिस्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। अंत में स्थिति में सुधार की कोई आशा ना देखते हुए जनता ने 1881 में अरबी पाशा के नेतृत्व में विरोध कर दिया। अरबी पाशा के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर स्माइल पाशा ने उसे अपना युद्ध मंत्री नियुक्त कर दिया।

लेकिन इंग्लैंड और फ्रांस अरबी पाशा के इस व्यवहार को सहन नहीं कर सके और उसकी शक्ति को कुचलना का फैसला किया। जिससे मिस्र में असंतोष व अव्यवस्था फैल गई और शीघ्र इंग्लैंड मिस्र का शासक बन बैठा। इस स्थिति को देखकर फ्रांस को विशेष पीड़ा हुई। लेकिन 1904 के एक समझौते के अनुसार मिस्र पर इंग्लैंड का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया गया।

सूडान की समस्या

इंग्लैंड एक समाजवादी देश था। केवल मिस्र पर अधिकार मात्र से वह संतुष्ट नहीं होना वाला था। उसने सूडान पर भी अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया था। उसे समय मिस्र के अधीन था, लेकिन मोहम्मद अहमद नामक व्यक्ति ने 1881 ई. में वहां विद्रोह कर दिया। इंग्लैंड को कुछ समय के लिए सूडान विजय प्राप्त करने के विचार को त्यागना पड़ा।

लेकिन इंग्लैंड के लिए सूडान का अत्यधिक महत्व था। इसलिए उन्होंने उसे हस्तगत करने के पुनः प्रयास करने प्रारंभ कर दिये। इस समय तक मोहम्मद अहमद जैसे सुयोग्य व्यक्ति का देहांत हो चुका था और उसके उत्तराधिकारी अत्यंत कमजोर थे। इसके कारण वहां असंतोष व्याप्त हो गया था। इस परिस्थितियों का लाभ उठाकर इंग्लैंड ने एक विशाल सेना भेज कर सूडान पर अपना अधिकार कर लिया।

फैशोडा की घटना

सूडान की इंग्लैंड विजय से फ्रांस को अत्यंत दुख हुआ। फैशोडा भी दोनों देशों के बीच विवाद का बिंदु था और दोनों (फ्रांस और इंग्लैंड) उस पर अपना अधिकार करना चाहते थे। वास्तव में फैशोडा अंग्रेजों के साम्राज्य के उत्तरी तथा दक्षिण भाग और फ्रांसीसियों के साम्राज्य का पूर्वी और पश्चिम भाग का केंद्र बिंदु था। इसलिए अंग्रेज जनरल किचनर तथा फ्रांसीसी जनरल मार्श के बीच फैशोडा में एक विवाद उठ खड़ा हुआ कि किस देश का झंडा फैशोडा में लगाया जाएगा। युद्ध की संभावना अत्यधिक बढ़ गई थी। अंततः फ्रांसीसियों ने अपनी कमजोरी को ध्यान में रखते हुए अंग्रेजों के साथ एक समझौता कर लिया। जिसके परिणाम स्वरुप सूडान में इंग्लैंड तथा मिस्र के द्वैध शासन की स्थापना हो गई थी।

बोअर–समस्या

सन् 1652 में डच जिन्हें बोअर भी कहा जाता था। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के केप कॉलोनी में अपने उपनिवेश की स्थापना कर ली। वे अत्यंत धार्मिक थे और अंग्रेजों से घृणा करते थे। सन् 1815 में अंग्रेजों ने भी केप कॉलोनी में बसना प्रारंभ कर दिया और उनकी संख्या में बढ़ोतरी होने लगी। इस स्थिति में बोअर संकीर्ण हो गए और भी वे उस स्थान को छोड़कर ट्रान्सवाल, नेटाल, ऑरेंज फ्री स्टेट में चले गए। किंतु 1829 में अंग्रेजों ने ट्रान्सवाल पर अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से बोअरों से युद्ध किया। लेकिन इस युद्ध में अंग्रेजों को पराजय का मुंह देखना पड़ा और ट्रान्सवाल को स्वतंत्र घोषित कर दिया गया।

सन् 1881 में इंग्लैंड को ट्रान्सवाल में सोने की ख़ानों की जिम्मेदारी प्राप्त हुई जिसके कारण इंग्लैंड में ट्रान्सवाल में प्रवेश करना प्रारंभ कर दिया। इससे वह बोअरों की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया।

इस समय वहां अंग्रेज निवासियों का नेता सोसिल रोड्स था। उसने दक्षिण अफ्रीका में बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। यहां संपूर्ण प्रदेश उसके नाम रोडेशिया कहलाया। अब अंग्रेजों और बोअरों के मध्य संबंध तनावपूर्ण हो गए किंतु बोअरों ने उन्हें पराजित कर दिया। इंग्लैंड बोअरों से अपनी पराजय का बदला लेने के लिए अवसर की प्रतीक्षा में था। अंतः 1899 ई में उसने ऑरेंज फ्री स्टेट व ट्रान्सवाल के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ कर दिया। प्रारंभ में बोअरों को कुछ सफलता प्राप्त हुई लेकिन अंत में वे पराजित हुए। 1902 ईस्वी में अंग्रेजों और बोअरों के मध्य एक संधि हुई जिसके अनुसार ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेट पर अंग्रेजों के अधिकार को स्वीकार कर लिया स्वीकार कर लिया गया और डच भाषा राजभाषा कर दी गयी।

इस संधि के बोअरो बोअरों को सुविधा प्रदान की गई किंतु उनका असंतोष समाप्त

नहीं हुआ। अंततः इंग्लैंड ने ट्रान्सवाल व ऑरेंज फ्री स्टेट को क्रमशः 1906 ई. वह 1907 ई. में स्वतंत्रता प्रदान कर दी तथा ट्रान्सवाल ऑरेंज फ्री स्टेट, केप कॉलोनी व नेटाल को 'दक्षिण अफ्रीका संघ' के नाम से संगठित कर दिया गया।

फ्रान्स

फ्रान्स अफ्रीका के महत्वपूर्ण प्रदेश जैसे मिस्र, अल्जीरिया, टूयूनिस और मोरक्को पर अपना नियन्त्रण स्थापित करना चाहता था। किन्तु इंग्लैंड में उसका विरोध किया तथा मिस्र पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। किन्तु धीरे–धीरे फ्रान्स ने दक्षिण अफ्रीका के काई महत्वपूर्ण उपनिवेश पर अधिकार स्थापित किया कर लिया।

1847 ई0 में फ्रान्स में अल्जीरिया और 1881 में ट्यूनिस पर अधिकार कर किया। साथ ही उसने गुआना, आइवरी कोस्ट, फ्रेन्च, कांगो और सहारा के नखलिस्तान पर भी संरक्षण स्थापित कर लिया। 1904 ई0 में इग्लैण्ड व फ्रांस में मोरक्को के प्रश्न पर आपस में एक सन्धि कर ली और इस प्रकार फ्रान्स अफ्रीकी के उत्तर पश्चिमी प्रदेशों में एक विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने में सफल रहा।

जर्मनी

जब तक जर्मनी का चान्सलर बिस्मार्क रहा (1870–1890) ई0 तब तक जर्मनी उपनिवेश स्थापना का घोर विरोधी था। क्योंकि वह इग्लैण्ड के साथ अपने खराब नहीं करना चाहता था। लेकिन बाद में जर्मनी के लिए उपनिवेश स्थापना की ओर ध्यान प्रारम्भ किया क्योंकि जर्मनी के औद्योगिक विकास और राश्ट्रीय गौरव के लिए उपनिवेशों की स्थापना अत्यन्त आवश्यक था। साथ ही बढ़ती जनसंख्या को बसाने के लिए उसे अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता थी।

अतः जर्मनी ने 1884 से 1890 तक तोगोलैण्ड, कैमरून, पूर्वी अफ्रीका और दक्षिण पश्चिम अफ्रीका में कुछ उपनिवेश स्थापित कर लिए।

स्पेन

स्पेन ने अफ्रीका ने दक्षिण पश्चिम समुद्र पर अपने कुछ उपनिवेश स्थापित किये। 1908 ई0 में उसने जिब्राल्तर द्वीप के सामने कुछ प्रदेशों पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इटली

इटली ट्यूनिश के प्रदेश पर अपना अधिकार करना चाहता था। परन्तु फ्रांस द्वारा वहाँ अधिवत्य स्थापित किये जाने के कारण उसने 1883 ई0 में लाल सागर के किनारे के प्रदेश इरीद्रिया पर एवं पूर्वी सोमाली लैण्ड के कुछ भाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इटली ने त्रिपोली तथा उसे आस–पास के प्रदेश पर अपना प्रमुख स्थापित कर लिया और उसे कालान्तर में 'लीबिया' नाम दे दिया।

पुर्तगाल

पुर्तगाल ने अंगोला पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। वह बेल्जियम कांगों के दक्षिण में था। बाद में पुर्तगाल ने मोजम्बिक पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

2.3.3 बोध प्रश्न–1

प्रश्न 1: यूरोपीय देशों की रूचि अफ्रीका में क्यों थी? दस पंक्तियों में समझाइए।

प्रश्न 2: निम्न प्रश्नों पर सही/गलत के निशान लगाइए–

(a) अफ्रीका से सर्वाधिक लाभ फ्रांस को हुआ।

(b) जर्मनी को आत्म–सन्तुष्ट देश कहा जाता थात्र

(c) अफ्रीका की जलवायु और भौगोलिक स्थिति अच्छी थी।

(d) सूडान पर फ्रांस ने अधिकार स्थापित किया।

2.4 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि यूरोप की महाशक्तियों ने सम्पूर्ण अफ्रीका का आपस में विभाजन कर लिया। विभाजन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश यह था कि यह कार्य अत्यन्त शान्तिपूर्ण तरीके से किया गया। यद्यपि कई अवसरों पर आपसी एवं मतभेद बढ़ जाने के कारण युद्ध की सम्भावनऐं अत्यधिक बढ़ गयीं किन्तु वार्तालाप और कूटनीति के द्वारा मतान्तरों की शान्तिपूर्ण ढंग से हल कर लिया गया। विभाजन का एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी था कि यह विभाजन अत्यनत धीमी गति से और क्रमानुसार किया गया।

2.5 शब्दावली

1. **बोअर :** सुदूर दक्षिणी अफ्रीका में रहने वाले डच निवासियों को बोअर कहा जाता था।
2. **द्वैध शासन** दो शक्तियों (दो देशों या दो पदों) द्वारा चलाया जाने वाला शासन द्वैज शासन कहलाता है।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

(a) ×

(b) ✓

(c) ×

(d) ×

इकाई 3 यूरोप का औपनिवेशिक विस्तार

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 औपनिवेशिक विस्तार के प्रेरक तत्व

3.3.1 आर्थिक कारण

3.3.2 समाज के निहित स्वार्थ

3.4 बोध प्रश्न

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.1 उद्देश्य

गैर–यूरोपीय देशों में यूरोप के देशों का औपनिवेशिक विस्तार आधुनिक यूरोप के इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है 19वीं शताब्दी के द्वितीय चरण में यूरोप के विविध देशों द्वारा गैर–यूरोपीय देशों की लूट और बंटवारे की प्रक्रिया में यूरोपीय राजनीति का स्वरूप पूर्णतया बदल गया था। इस इकाई में हम यूरोप के औपनिवेशिक विस्तार उसके पीछे उनके उद्देश्यों (कारणों) को जानने का प्रयास करेगें।

3.2 प्रस्तावना

यूरोपीय सभ्यता प्रारम्भ से ही प्रसारोन्मुख रही है। पन्द्रहवीं–सोलहवीं शताब्दियों में सागर पार के देशों की खोजों के फलस्वरूप औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का युग आया। जिसे लेकर 17वीं तथा अठारहवीं शताब्दी में जद्दोजहद होती रही। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण अमेरिका पर यूरोप का कब्जा हो गया। नेपोलियन की पराजय के फलस्वरूप यूरोप में एक ही औपनिवेशिक शक्ति बची थी–ब्रिटेन। देखा जाए तो यह औपनिवेशिक उदासीनता का चरण था। 1870 ई0 के बाद यूरोपीय राज्यों की औपनिवेशिक नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और औपनिवेशिक उदासीनता के युग का अन्त हुआ। आने वाले समय में यूरोप की महाशक्तियों में भयंकर प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई जिसके फलस्वरूप उन्होंने समस्त अफ्रीका को आपस में बांट लिया और अनेक द्वीपों पर अधिकार कर लिया।

इस औपनिवेशिक होड़ में मुख्य प्रतिस्पर्धी ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी थे, लेकिन यूरोप के छोटे–छोटे देश भी उपनिवेश के लोभ को रोक नहीं सके। इस युग में साम्राज्यवाद की नवजागृति किसी विशेष कारण से नहीं हुई। बल्कि अनेक कारणों को सम्मिलित परिणामस्वयप हुई। इसलिए औपनिवेशिक विस्तार का अध्ययन उसके कारणों से ही शुरू करना चाहिए।

3.3 औपनिवेशिक विस्तार के प्रेरक तत्व

3.3.1 आर्थिक कारण

अतिरिक्त उत्पादन

नवीन साम्राज्यवाद के विकास में औद्योगिक क्रान्ति ने बड़ी सहायता की। 1861 ई0 के बाद फ्रांस, जर्मनी, इटली का उद्योगीकरण बड़े जोर से हो रहा था और इन देशों को अतिरिक्त उत्पादन बड़ी तेजी से बढ़ रहा था। जिससे सूती कपड़े और लोहे के उत्पादन में इंग्लैण्ड के एकाधिकार को धक्का लगने लगा। अब इंग्लैण्ड को अपने माल की खपत की चिन्ता होने लगी। अतः विविध यूरोपीय देशों ने अपने यहाँ बाहर से आने वाले माल पर भारी कर लगाना प्रारंभ कर दिया। इस कारण औद्योगिक देशों को अपना अतिरिक्त माल बेचने के लिए बाजार ढूढ़ने की आवश्यकता पड़ी।

इस समस्या के समाधान का एक ही उपाय था—उपनिवेश की स्थापना। यही कारण है कि 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में यूरोप का खूब औपनिवेशिक विस्तार हुआ जिसका मुख्य कारण अतिरिक्त उत्पादन साबित हुआ।

अतिरिक्त पूँजी

अतिरिक्त पूँजी की समस्या साम्राज्यवाद का दूसरा प्रेरक तत्व था। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वयप यूरोप के देशों में अत्यधिक धन इकट्ठा हो गया। उत्पादन बृहद पैमाने पर हुआ और वस्तुओं का विक्रय भी बढ़ा। अतः इन देशों में बड़े—बड़े पूंजीपतियों का वर्ग तैयार होने लगा और मुनाफे के कारण बड़ी मात्रा में पूँजी भी इकट्ठी होने लगी। अब प्रश्न उठा कि इस अतिरिक्त पूँजी को कहाँ लगाया जाए। अतः अधिक लाभ कमाने की दृष्टि से अपनी पूँजी अन्य पिछड़े देशों में लगाना चाहते थे। इस प्रकार इन अतिरिक्त पूँजी वाले पूँजीपतियों ने अपनी सलारों को उपनिवेश स्थापना के लिए प्रेरित किया।

यातायात के साधन

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप यातायात के साधनोंका विकास हुआ। भाप की शक्ति से चलने वाले जहाजों तथा तार और समुद्री तार से आविष्कार के फलस्वरूप दूर—दूर के देशों पर अधिकार करना तथा उन पर शासन करना आसान हो गया। हालांकि यातायात के साधनों का आविष्कार बहुत पहले हो चुका था लेकिन उनका असल प्रभाव उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में दिखायी पड़ने लगे थे। इन साधनों के जरिये उपनिवेश विस्तार की प्रक्रिया काफी आगे बढ़ी।

उष्ण कटिबन्धीय वस्तुओं की माँग

औद्योगिक देशों द्वारा उष्ण कटिबन्धीय वस्तुओं की माँग साम्राज्यवाद का एक अन्य कारण बना। उद्योग—प्रधान देशों में अधिकतर लोग उद्योग—धन्धों में लगे रहते थे। परिणामस्वरूप उन देशों में अन्न की उपज कम होने लगी और खाद्य पदार्थों (तेल, काफी, चाय) की बाहरी देशों से मँगाना आवश्यक हो गया। अतः यातायात के साधनों से दूरस्थ उपनिवेशों का सस्ते खाद्य पदार्थों, अरब कटिबन्धीय वस्तुओं तथा कारखानों के लिए कच्चे माल की प्राप्ति की दृष्टि से महत्व बढ़ने लगा तथा इन वस्तुओं की पूर्ति उपनिवेशों द्वारा ही सम्भव थी।

आत्मनिभरता

आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर होने की भावना से भी रंगीन साम्राज्यवाद को बढ़ावा मिला। यह माना जाने लगा कि साम्राज्यवादी देशों को किसी भी वस्तु के लिए दूसरों का मुँह नहीं देखना पड़ेगा। ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जर्मनी आदि सभी उपनिवेशों द्वारा अपनी जरूरतों की पूर्ति करना चाहते थे।

3.3.2 साम्राज्य के निहित स्वार्थ

साम्राज्य–स्थापना का लाभ सम्पूर्ण राष्ट्र नहीं वरन् कुछ लोग लेते हैं। ये कुछ लोग स्वार्थ से प्रेरित होकर साम्राज्यवाद का समर्थन करते हैं। देश के अन्दर इन शक्तिशाली लोगों का एक वर्ग बन गया जिन्हें साम्राज्यवाद के निहित का वर्ग कह सकते हैं।

व्यवसायी वर्ग

साम्राज्यवाद के निहित स्वार्थ के वर्ग में सर्वप्रथम कई प्रकार के व्यवसाय आते हैं। जिनमें रूई के कपड़े तथा लोहे के व्यवसायी का महत्वपूर्ण स्थान है। ये साम्राज्यवाद के कट्टर समर्थक थे क्योंकि उन्हें अपना माल खपाने के समर्थन थे। साम्राज्यवाद के विकास से इन निहित स्वार्थ के लोगों को स्वार्थ–सिद्धि को पूरी आशा रहती थी। अस्त्र–शस्त्र, गोला बारूद आदि तैयार करने वाली कम्पनियों के मालिक और बड़ी–बड़ी जहाज की कम्पनियों के मालिक इसलिए उपनिवेश चाहते थे कि पिछड़े देशों को जीतने के लिए जो युद्ध होगें उससे उनके व्यवसाय की तरक्की होगी।

इन व्यवसायी वर्ग को कुछ अन्य वर्गों से जबरदस्त समर्थन मिलता था। इनमें सेना के अफसर मुख्य थे। औपनिवेशक युद्ध यश प्राप्ति का मौका देता था। वे चाहते थे उनके देश में एक बहुत बड़ी सेना रहे जिससे उनहें पदोन्नति को अवसर प्राप्त होते रहे।

ईसाई मिशनरियाँ

एशिया और अफ्रीका में 'पथभ्रष्ट' पिछड़ी जातियों में ईसाई धर्म फैलाने के लिए यूरोप के ईसाई पादरियों ने भी साम्राज्यवाद को जबरदस्त समर्थन दिया। ईसाई पादरी साम्राज्य–विस्तार के एक अच्छे साधन थे। धर्म प्रचार के कार्य में बर्बर जातियों द्वारा इन पादरियों की हत्या से साम्राज्यवादियों को अच्छा बहाना ''ईश्वर प्रत्त मौका'' मिल जाता था या विदेशों में इन पादरियों का किसी तरह अपमान होता था तो उस देश की सरकार उस अपमान का बदला लेने उन देशों पर आक्रमण करती या उनके आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप करती थी। हालांकि इन धर्म प्रचारकों में कुछ तो सच्चे धार्मिक तथा मानव–प्रेमी थे और उन्होंने मानवता की सच्ची सेवायें की लेकिन वे अपने देश के लिए गुप्तचरी का भी कार्य करते थे। कुछ भी हो साम्राज्य विस्तार में इन धार्मिक प्रयत्नों का बड़ा ही महत्व है।

भौगोलिक साहसिकों का वर्ग

पुर्नजागरण के समय से यूरोप में भौगोलिक स्रातों की जो प्रवृत्ति चल पड़ी थी उसमें उन्नीसवीं शताब्दी से और अधिक विकास हुआ। इस काल में अनेक साहसिक भौगोलिक अन्वेषण हुए जिन्होंने केवल साहसिक पूर्ण कार्यों के लिए ही नये–नये उपनिवेश ढूँढ़ निकाले।

हेनरी मोर्टन स्टानले, डा0 डेविड लेबिग्स्टीन गुस्टाव नैकटिगाल आदि कुछ ऐसे ही उत्साही व्यक्ति थे। कांगों में बेल्जियम का उपनिवेश स्टानले के कार्यों के फलस्वरूप ही सम्भव हो सका। कैमरूप और तोगोलैण्ड को जर्मन उपनिवेश बनाने का श्रेय 'गुस्टाव नैकटिनाल' को जाता है।

उग्र राष्ट्रीयता

नवीन साम्राज्यवाद की मुख्य प्रेरक शक्ति राष्ट्रीयता से प्राप्त हुई थी। इन दिनों प्रतिक्रिया के विरूद्ध संघर्ष करके राष्ट्रीयता की विजय हो चुकी थी और जर्मनी में तथा उसका अनुकरण कर अन्य देशों में भी यह उग्र रूप धारण करती जा रही थी। ब्रिटेन और हालैण्ड देशों के अधीन विशाल साम्राज्य देखकर अन्य देशों विशेषकर जर्मनी, इटली आदि देशों में भी साम्राज्य विस्तार की इच्छा जागृत हुई। राष्ट्र के गौरव तथा राष्ट्रीय अभिमान की भावना से प्रेरित यह आवश्यक लगने लगा कि उनके पास भी साम्राज्य हो। यूरोप की महान शक्ति कहलाने के लिए उपनिवेशों का होना अति आवश्यक था। इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए उग्र राष्ट्रीयता का मार्ग चुना गया।

जर्मनी ने अपनी अद्वितीय सैन्य शक्ति से यूरोप के दो प्रमुख देशों फ्रांस और आस्ट्रिया को परास्त कर प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था। जर्मनी अपने–आपको सर्वश्रेष्ठ समझने लगा था। अतः राष्ट्रीयता की यह उग्र चेतना जर्मनी से अन्य राष्ट्रों में पहुँची और अन्तर्राष्ट्रीय विद्वेष, शंका एवं अशान्ति साम्राज्यवाद के कारण बने।

साम्राज्यवादी प्रसार

साम्राज्यवाद के निहित स्वार्थ, जिन्होंने स्वार्थ साधन के लिए साम्राज्यवाद का समर्थन किया और उसे प्रोत्साहित किया। उनकी संख्या बहुत कम थी। देश के अधिकांश निवासियों को साम्राज्यवाद से प्रत्यक्ष लाभ नहीं था। फिर भी यूरोपीय देशों के सभी सामाजिक वर्गों ने साम्राज्यवाद के विस्तार में पूँजीपतियों का साथ दिया। इन पूँजीपतियों ने बड़ी आसानी से बहुमत को अपने पक्ष में कर लिया। ये पूँजीपति अपने देश में बहुत अधिक संगठित और शक्तिशाली थे। उन्होंने अपने कार्य सिद्धि के लिए निम्न उपाय अपनाए।

आत्मरक्षा

मनुष्य सबसे पहले सुरक्षा चाहता है। विदेशी आक्रमण से रक्षा के लिए तैयार रहना आवश्यक है और इसके लिए थल–सेना और नौ–सेना में वृद्धि करना आवश्यक है। लेकिन सामुद्रिक अड्डों के अभाव में नौ–सेना का क्या महत्व हो सकता था। अतः इस तर्क का सहारा लेकर ही ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों ने सारे संसार में अपने सामुद्रिक अड्डे स्थापित किये और फिर सामुद्रिक अड्डों की रक्षा के लिए उसे पास पड़ोस के भूभागों पर अधिकार जमाना आवश्यक हो गया।

आत्म–रक्षा की आवश्यकता के आधार पर यह तर्क दिया गया कि युद्ध के समय अबाध रूप से कच्चा माल प्राप्त करने के लिए उपनिवेशों का होना अत्यन्त आवश्यक है। उनका कहना था कि यदि पिछड़े देशों पर अधिकार नहीं किया गया तो युद्ध के समय कोयला और लोहा नहीं मिल सकेगें और युद्ध सामग्री तैयार करने में परेशानी का सामना करना पड़ेगा। तेल न मिलने से जहाजों का चलना बन्द हो जायेगा आदि–आदि। साम्राज्यवाद के पोषक इसी तरह की दलीलें देकर भोली–भाली जनता को साम्राज्यवाद के पक्ष में करने की कोशिश में लगे रहते थे।

आर्थिक राष्ट्रीयता और आर्थिक कल्याण

साम्राज्यवाद के आर्थिक कारण का वर्णन करते समय इस विषय पर हम चर्चा कर चुके हैं। उद्योगों के विस्तार के साथ कच्चे माल को प्रचुर मात्रा में और सस्ते दामों में प्राप्त करने तथा तैयार माल को अधिक से अधिक लाभ पर बेचने के लिए उपयुक्त बाजार की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। इन आवश्यकताओं की पूर्ति का एकमात्र साधन यही था कि पिछड़े हुए ऊष्ण–कटिबन्धीय प्रदेशों में जहाँ सब प्रकार का कच्चा

माल प्राप्त हो सकता है और तैयार माल बेचा जा सकता हो वहाँ प्रभाव क्षेत्र स्थापित किये जाए ताकि किसी अन्य देश को वहाँ माल खरीदने और बेचने की सुविधा हो सके और कच्चे माल के क्रय तथा तैयार माल के विक्रय दोनों की दृष्टि से स्वावलम्बी हो सके। इस कारण इन 'पिछड़े' देशों पर अधिकार जमाने के लिए विभिन्न राष्ट्रों में तीव्र प्रतियोगिता होने लगी। इस प्रकार आर्थिक राष्ट्रीयता का जनम हुआ और भोली भाली जनता से कहा जाने लगा कि कच्चे माल और बाजार के मित्र अन्य देशों पर अधिकार करने में ही राष्ट्र का आर्थिक कल्याण है।

राष्ट्रीय प्रतिष्ठा

साम्राज्यवादियों ने जनता की राष्ट्रीयता और देश–प्रेम की भावना को अच्छी तरह उभारा। उस समय लोगों का यह विश्वास था कि प्रथम श्रेणी का राष्ट्र होने के लिए उपनिवेशों का होना अत्यन्त आवश्यक है। यह देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न होता था। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों ने ऐसी ही आकांक्षा से प्रेरित होकर उपनिवेश स्थापना पर जोर दिया। यदि किसी गैर यूरोपीय देश में साम्राज्यवादी देश को राष्ट्रीय झण्डे या नागरिकों का अपमान होता था तो इस अपमान का बदला लेना उस देश का कर्तव्य माना जाता था। जैसे चीन में जर्मनी के दो पादरियों की हत्या को अपमान मानकर चीन के बन्दरगाह पर अधिकार लिया गया। इस प्रकार राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त करने की आकांक्षा भी नवीन साम्राज्यवाद का प्रेरक तत्व सिद्ध हुआ।

अतिरिक्त जनसंख्या का प्रश्न

देश की बढ़ती हुई आबादी की समस्या को भी साम्राज्यवाद के प्रसार के लिए प्रचार का एक साधन बनाया गया। उस समय यूरोपीय देशों की जनसंख्या में अपार वृद्धि हो रही थी। यूरोप के औद्योगिक देशों ने इस समस्या के समाधान का उपाय निकाला कि कुछ लोग बाहर जाकर उपनिवेशों में रहे। लेकिन आंकड़ों से पता चलता है कि 1864 से 1914 तक लगभग 2 करोड़ यूरोपीय निवासी अपना देश छोड़कर बाहर गये और केवल 5 लाख ही ऐसे लोग ही जो उपनिवेशों में बसे।

परोपकारिता और मानवता

यूरोपीय देशों के राष्ट्रीय अभियान की भावना में अपनी सभ्यता के उच्च होने का अभिमान भी शामिल था और उनमें यह भावना जोर पकड़ने लगी कि पृथ्वी के विभिन्न भागों में बसे हुए असभ्य, अर्द्धनग्न, और अविकसित लोगों के बीच अपनी उत्कृष्ट सभ्यता और संस्कृति का प्रसार कर उनका उद्धार करना तथा उन्हें ऊँचा उठाना उनका कर्तव्य है।

रूडयार्ड किपलिंग में यह तर्क प्रस्तुत किया कि काले लोगों को सभ्य बनाना गोरे लोगों का महान कर्तव्य है। फ्रांस का जुल्स फेरी, ब्रिटेन का शीलों, जर्मनी का प्रोफेसर ख्सित्के ऐसे ही कुछ व्यक्ति थे। अतः साम्राज्यवाद के विस्तार में इन परोपकारी और मानवतावादी प्रयत्नों का महत्वपूर्ण स्थान है।

3.4 बोध प्रश्न–1

1. यूरोप में साम्राज्यवादी भावन का विकास किन कारणों से हुआ? दस पंक्तियों में समझाइए।

2. निम्न प्रश्नों में सही/गलत का चिन्ह लगाइए–

   (a) औपनिवेशिक विस्तार का प्रमुख कारण आर्थिक था।

(b) उपनिवेशों पर राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक नहीं था।

(c) मानवता की सेवा यूरोपीयों का उद्देश्य था।

(d) ईसाई धर्म का प्रचार औपनिवेशिक विस्तार का एक अंग था।

3.5 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि काल में प्रत्येक यूरोपीय देश अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा व आर्थिक कारणों से अन्य देशों पर प्रभुत्व स्थापित करने की प्रेरणा प्राप्त कर रहा था। यह प्रतिष्ठा का भी प्रश्न था। ब्रिटेन के विषय में कहा जाता था कि उसके साम्राज्य में सूरज कभी नहीं डूबता है। यूरोपीय साम्राज्यवादी कोई–न कोई बहाना कर कमजोर देश पर अधिकार करना चाहते थे।

3.6 शब्दावली

उपनिवेशवाद

किसी शक्तिशाली देश द्वारा किसी अन्य कमजोर देश पर राजनैतिक और आर्थिक रूप से अधिकार करना उपनिवेशवाद कहलाता है।

पूँजीवाद

पूँजी पर आधारित वह शाब्दिक एवं राजनीतिक व्यवस्था जिसमें सम्पत्ति का व्यापार तथा उद्योग निजी सम्पत्ति हो और जहाँ अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार प्रतियोगिता हो।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

(a) ✓

(b) ×

(c) ×

(d) ✓

इकाई 4 जर्मनी की विदेश नीति (1890–1914)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विलियम कैसर द्वितीय (1890–1914)

4.3.1 गृह नीति

4.3.2 विदेश नीति

4.4 बोध प्रश्न

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

4.1 उद्देश्य

इस इकाई में जर्मन साम्राज्य के सम्राट विलियम कैसर द्वितीय की नीतियों के विषय में चर्चा की गई है। साथ ही इस समयावधि (1890–1914) के मध्य जर्मनी के अन्य यूरोपीय देशों के साथ सम्बन्ध किस प्रकार के रहे, यह भी जानने का प्रयास करेगें।

4.2 प्रस्तावना

जर्मनी के चांसलर बिस्मार्क ने अपने कार्यकाल में विभिन्न देशों से सन्धियों का जाल बुनकर जर्मनी की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को सुरक्षित बना दिया था तथा फ्रांस को मित्रबिहीन। यूरोपीय राजनीति में बिस्मार्क एक सफल बाजीगर था जो एक साथ पाँच गेदों रूस, आस्ट्रिया, फ्रांस, इटली तथा ब्रिटेन को उछालता रहता था तथा जिसमें से दो हमेशा उसके हाथमें रहती थी। इसी बीच 1888 ई0 को सम्राट प्रथम विलियम की मृत्यु के बाद के विलियम द्वितीय सम्राट बना। विलियम द्वितीय स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति था अतः किसी के नियन्त्रण मे रहना उसके लिए असह्य था। अतः कुछ ही समय में बिस्मार्क और नये सम्राट के बीच अनबन हो गई। बिस्मार्क ने सम्मानपूर्वक पद त्याग करना ही उचित समझा और 1890 ई0 में उसने पदत्याग कर दिया। अब जर्मनी की नीतियों में एकाएक आमूल परिवर्तन होने लगे।

4.3 विलियम कैसर द्वितीय की नीति (1890–1914)

4.3.1 गृह नीति

फ्रेडरिक की मृत्यु के बाद सन् 1888 में उसका पुत्र विलियम कैसर द्वितीय जर्मनी का सम्राट बना। कैसर द्वितीय के समय में प्रधानमंत्री सिद्धान्त और व्यवहार दोनों दृष्टि से उसके कर्मचारी होने लगे जबकि पहले स्थितियाँ बिल्कुल उल्टी थीं।

1890 ई0 के बाद जर्मनी में चार प्रधानमंत्री हुए केव्रिवि (1890–1894), लोहे न लोहे (1894–1900), फॉन ब्यूली (1900–1909) तथा बेथेमेन हालबडा (1909–1917) परन्तु उनमें से कोई भी ऐसा नहीं था जो सम्राट पर काफी प्रभाव डाल सका हो।

समाजवाद

औद्योगिक विकास के साथ समाजवाद ने भी उन्नति की। बिस्मार्क समाजवाद का घोर विरोधी था। विलियम द्वितीय सामाजिक तथा आर्थिक सुधारों के द्वारा समाजवादियों का प्रभाव नष्ट कर देना चाहता था। उसने 1890 ई0 में मजदूरों को संरक्षण देने हेतु कानून बनाया गया जिसके द्वारा कार्य के घण्टे सीमित किये गये और रविवार के दिन अवकाश की व्यवस्था की गई। 1900 ई0 बीमारी, दुर्घटना एवं वृद्धावस्था की स्थिति के लिए बीमा की व्यवस्था की गई। इस उदार नीति का परिणाम यह हुआ कि समाजवादी लोगों ने पुनः अपना संगठन करना और प्रचार करना आरम्भ किया। जर्मनी के राजनीतिक जीवन में समाजवादी प्रजातन्त्रीय दल का उत्थान द्वितीय विलियम के शासनकाल की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है।

वास्तव में यह आर्थिक सत्र में क्रान्ति की उच्छा का प्रतीक ही नहीं था बस सम्राट के स्वच्छन्द शासन के विरोध तथा प्रजातन्त्रीय संस्था की माँग का प्रतीक भी था। यह जर्मनी का प्रमुख सुधारवादी दल था।

सैन्य–शक्ति का विस्तार

जर्मनी का उत्थान सेना के बल पर हुआ था और साम्राज्य भी सेना ही था। सम्राट सैन्य शक्ति के महत्व को खूब समझता था और उसका अधिकतम विस्तार करना चाहता था। उसने लोकसभा के कंजरवेटिव दलों के समर्थन से सेना का खूब विस्तार किया गया। 1893 ई0 में शान्ति–काल के लिए सेना की संख्या 4,25,000 नियत की गई। 1902 में यह बढ़ाकर 4,95,000 कर दी गई।

1902 ई0 में अनिवार्य सैनिक सेवा की अवधि तीन वर्ष से घटाकर दो वर्ष कर दी गई। इस समस्त व्यवस्था के परिणामस्वरूप जर्मनी की सैन्य शक्ति बड़ी प्रबल हो गई।

जल सेना

स्थल सेना के साथ ही जल सेना की ओर विलियम ने ध्यान8 दिया। जर्मन व्यापार और औपनिवेशिक साम्राज्य की रक्षा और विश्व राजनीति में अपनी स्थिति के अनुकूल भाग लेने के लिए एक शक्तिशाली नौसेना अत्यन्त आवश्यक थी तथा जर्मनी की औपनिवेशिक आकांक्षाओं की पूर्ति तभी हो सकती है जब वह समुद्र पर अधिकार स्थापित करें। इसलिए उसने लड़ाई के जहाजों तथा सैनिक बन्दरगाहों के निर्माण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया।

कील नहर का निर्माण

डेनमार्क के प्रायद्वीप से जर्मनी का समुद्र तट दो भागों– उत्तरी सागर तट तथा बाल्टिक सागर तट में विभाजित था। उस समय उत्तरी सागर से बाल्टिक सागर में पहुँचने के लिए डेन्मार्क का चक्कर लगाना पड़ता था। इस चक्कर को बचाने के लिए तथा अपने जहाजों का अधिक प्रभावकारी उपयोग करने के लिए श्लेस्किा–हाटस्टीम के प्रदेश में जगील नगर के पास से बाल्टिक सागर से उत्तरी सागर तक एक नहर खोदी गयी जो 1895 में पूर्ण हुई जिसके फलस्वरूप जर्मनी की नौसेना की उपयोगिता दुगुनी बढ़ गयी।

नौ–सेना का विस्तार

1898 में विलियम–II ने प्रथम नौ सेना कानून बना और 1900 में एक दूसरा कानून बनाया गया जिसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि नौ–सेना का धीरे–धीरे इस प्रकार विस्तार होता रहे कि 1900 तक यह दुगुनी हो जाए। इसके साथ ही एक नाविक संघ (Navy League) की स्थापना की गई जिसका पूरे साम्राज्य में समर्थन किया गया।

लेकिन जर्मनी की इस नीति से इंग्लैण्ड को चिन्ता हुई और उसने अपनी नौसैनिक शक्ति का विस्तार करना प्रारम्भ किया। जर्मनी ने 1905 ई0 में सबसे पहला ट्रेडनॉट (विशाल जंगी जहाज) बना जहाजों के निर्माण का काम बड़ी शीघ्रता से होने लगा और बड़े–बड़े ट्रेडनॉट बनाये जाने लगे। इन जहाजों के उपयोग के लिए कील नदी भी गहरी की गई। इस प्रकार इन सभी प्रयत्नों से जर्मनी की नाविक शक्ति मजबूत हो गई।

विलियम द्वितीय/विदेश नीति

1890 ई0 में बिस्मार्क के पतन के फलस्वरूप वैदेशिक क्षेत्र में ''बिस्मार्क व्यवस्था का विनाश हो गया और उसके स्थान पर बिलियम द्वितीय की विश्व–राज का युग प्रारम्भ हुआ। बिलियम–II जर्मनी को केवल यूरोप में ही नहीं पूरे विश्व में राजनीति का केन्द्र बनाना चाहता था। उनका मानना था कि विश्व में कहीं भी ऐसा कोई कार्य नहीं होना चाहिए जिसमें जर्मनी की राय न ली जाए। उसका मानना था कि 'विश्व शक्ति प्राप्त करो मिट जाओ''। उसका मानना था कि जर्मन सबसे श्रेष्ठ जाति है और ईश्वर ने सम्पूर्ण विश्व को सभ्यता सिखाने के लिए जर्मन जाति को रोका है। इसी भावना के आधार पर आस्ट्रिया, स्विटजरलैण्ड, बेल्जियम, हालैण्ड आदि पर अधिकार करना वह अपना राष्ट्रीय कर्तव्य समझता था।

विदेश नीति के मुख्य सिद्धान्त

विलियम–II की विश्व–राजनीति मुख्य रूप से निम्न सिद्धान्तों पर आधारित थी।

पूर्वी समस्या में हस्तक्षेप

विस्मार्क ने अपने कार्यकाल में जर्मनी को युद्ध के खतरों से सुरक्षित करने के लिए पूर्वी समस्या में कोई रूचि नहीं ली थी। वह इस समस्या को उलझी हुई समस्या मानता था। जबकि इसके विपरीत विलियम द्वितीय तुर्की साम्राज्य की समस्या को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता था। वह बाल्कन प्रदेशों में प्रवेश करके बर्लिन से बगदाद तक रेलवे लाइन का निर्माण करना चाहता था। उसका विचार था कि रूस, इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया जैसे महान देशों की भाँति जर्मनी को भी एक महान शक्ति बनकर पूर्वी समस्या में निर्णायक भूमिका निभानी चाहिए।

अफ्रीका में औपनिवेशिक विस्तार

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप के लगभग सभी देशोंमें औद्योगिक क्रांन्ति से प्रभावित होकर अफ्रीका के विभिन्न प्रदेशों पर अधिकार स्थापित करने के प्रयास आरम्भ कर दिये। बिस्मार्क ने जर्मनी को सन्तुष्ट राष्ट्र समझकर अपने देश की गतिविधियों को यूरोप महाद्वीप तक सीमित रखने का प्रयास किया। किन्तु इसके विपरीत विलियम द्वितीय जर्मनी को यूरोप में संकुचित न रखकर अफ्रीका के प्रदेशों पर अधिक योग्य बनाना चाहता था। अतः उसने अफ्रीका में चल रही औपनिवेशिक विस्तार व अफ्रीका की लूट में जर्मनी को सम्मिलित करने का निर्णय लिया।

जर्मनी की नाविक शक्ति का विस्तार व सुदृढ़ीकरण

विलियम द्वितीय जर्मनी को विश्व शक्ति बनाने तथा औपनिवेशिक विस्तार के लिए जल सेना की सर्वोच्चता को आवश्यक समझता था विलियम द्वितीय की उग्र व महत्वाकांक्षी नेतृत्व में जर्मनी की जलसेना का तीव्र गति से विकास हुआ और पूरे विश्व में जर्मनी का इंग्लैण्ड के पश्चात दूसरा स्थान हो गया। बिस्मार्क ने इंग्लैण्ड के साथ अच्छे सम्बन्ध रखने के लिए जर्मनी को यूरोप महाद्वीप तक सीमित रखा। लेकिन इसके विपरीत विलियम द्वितीय ने जल–सेना का विस्तार कर इंग्लैण्ड के अपने सम्बन्ध खराब कर लिये। विश्व राजनीति में फ्रांस के एकाकीपन का अन्त हो गया जबकि विस्मार्क की नीति में यह मुख्य आधार था।

इतिहासकार हेलर के अनुसार ''विलियम द्वितीय ने विस्मार्क व्यवस्था के आवश्यक तत्वों का विनाश कर दिया तथा जर्मनी विश्व राजनीति में हस्तक्षेप करने योग्य है तथा इसके लिए किसी प्रकार के शक्ति–संतुलन व प्रतिरोधों की आवश्यकता नहीं है।''

जर्मनी और इंग्लैण्ड

19वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड यूरोपीय मामलों के प्रति पृथक्करण की नीति का पालन कर रहा था। विस्मार्क ने इंग्लैण्ड की वास्तविक शक्ति को समझकर जर्मनी और इंग्लैण्ड के मध्य अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये थे, किन्तु विस्मार्क के पतन के बाद विलियम द्वितीय ने कुछ ऐसे कार्य किये जिनके फलस्वरूप इंग्लैण्उ व जर्मनी के मध्य सम्बन्धों में नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। इंग्लैण्ड विश्व में जलसेना की सर्वोच्चता को कायम रखना चाहता था क्योंकि औपनिवेशिक विस्तार के लिए जल सेना इंग्लैण्ड के लिए आवश्यक थी। किन्तु जर्मन सम्राट ने जिसके लिए जल सेना आवश्यक नहीं थी अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जल सेना का विकास कर इंग्लैण्ड को नाराज कर दिया।

इसके अतिरिक्त 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में दक्षिण अफ्रीका की बोअर जाति के इंग्लैण्ड का संघर्ष करना पड़ा। इस युद्ध में विलियम द्वितीय ने बोअर लोगों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर इंग्लैण्ड से अपने सम्बन्ध और खराब कर लिये। इतना ही नहीं जब इंग्लैण्ड की सेना को एक स्थान पर पराजय मिली तो विलियम द्वितीय ने ट्रान्सवाल के प्रेसीडेन्ट क्रूगर को बधाई तार भेजा। माना जाता है कि इस बधाई तार ने दोनों देशों के मध्य शत्रुता को और बढ़ा दिया।

अब इंग्लैण्ड को अपनी परम्परागत पृथक्करण की नीति का त्याग करना पड़ा और उसने सन् 1902 में जापान के साथ सन्धि करके गुटबन्दी की नीति का प्रारम्भ किया जो प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने तक लगातार चलती रही। यह सम्पूर्ण परिवर्तन जर्मनी की विदेश नीति के परिणामस्वरूप ही हुआ।

जर्मनी और टर्की

विलियम द्वितीय ने अपने निजी स्वार्थों के कारण टर्की के आन्तरिक रूचि दिखानी प्रारम्भ की। वह अपनी व्यापारिक सुविधा के लिए बर्लिन से बगदाद तक रेलवे लाइन का निर्माण करना चाहता है। किन्तु टर्की की अनुमति के बिना यह सम्भव नहीं था। टर्की और जर्मनी के मध्य स्थापित नये व्यापारिक सम्बन्धों से भी इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

वास्तव में यह विलियम की मूर्खतापूर्ण नीति थी जो उसने इंग्लैण्ड जैसे देश को छोड़कर टर्की को अपना मित्र बनाने की सोची।

जर्मनी तथा रूस

जर्मनी ने अपनी विदेश नीति में रूस को सर्वाधिक महत्व दिया था। इसके विपरीत विलियम द्वितीय ने आस्ट्रिया के साथ घनिष्ठता स्थापित की थी। विलियम द्वितीय की उपेक्षपूर्ण नीति के कारण सन् 1890 के पश्चात् जर्मनी और रूस के सम्बन्ध बिगड़ते गये। बिस्मार्क के समय में रूस के साथ सम्पन्न की गयी सभी राजनीतिक सन्धियों को समाप्त कर दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप रूस धीरे–धीरे फ्रांस के निकट आता गया और 1894 ई0 में रूस व फ्रांस के मध्य द्विवर्गीय सन्धि हुई। इसके फलस्वरूप फ्रांस से इस सन्धि को युगान्तरकारी घटना कहा गया है।

जर्मनी और फ्रांस

सेडान के युद्ध की पराजय और फ्रेंकफर्ट की सन्धि के कारण फ्रांस और जर्मनी में शत्रुता आ गई थी। सन् 1890 के बाद विलियम द्वितीय की विश्व–राजनीति के फलस्वरूप फ्रांस का एकाकीपन समाप्त हो गया। उसे सन् 1890 में रूस तथा सन् 1904 में इंग्लैण्ड जैसे शक्तिशाली देश की मित्रता का लाभ प्राप्त हुआ। 1907 ई0 में रूस, इंग्लैण्ड और फ्रांस तीनों देशों ने मिलकर जर्मनी, आस्ट्रिया, और इटली के विरूद्ध एक शक्तिशाली संघ की स्थापना की। इसी संघ की सहायता से फ्रांस को सन् 1911 में मोरक्को समस्या का समाधान हुआ और जर्मनी बुरी तरह असफल हुआ।

इस प्रकार विलियम द्वितीय की विदेश नीति यूरोपीय शक्ति के लिए घातक सिद्ध हुई।

4.4 बोध प्रश्न–1

1. विलियम कैसर द्वितीय की विदेश नीति कहाँ तक सफल रही? दस पंक्तियों में समझाइए।

2. निम्न प्रश्नों पर सही/गलत के चिन्ह लगाइए–

   (a) विलियम द्वितीय प्रारम्भ से ही बिस्मार्क के विचारों का समर्थक था।( )

   (b) विलियम ने पूर्वी समस्या में हस्तक्षेप किया।( )

   (c) बिस्मार्क जर्मनी को तुष्ट राष्ट्र समझता था।( )

   (d) विलियम द्वितीय ने इंग्लैण्ड को अपना शत्रु बना लिया।( )

4.5 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि विलियम द्वितीय की विदेश नीति यूरोप की शांन्ति के लिए घातक सिद्ध हुई। उसकी नीति ने पूर्वी समस्या, अफ्रीका की लूट, जलसेना के विस्तार से रूस, इंग्लैण्ड और फ्रांस आदि देशों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला।

इसी नीति के कारण विभिन्न देशों में राजनीतिक गुटबन्दी का विकास हुआ तथा सम्पूर्ण यूरोप दो सैनिक शिविरों में विभाजित हो गया। दुर्भाग्यवश इसी मध्य आस्ट्रिया और सर्बिया के मध्य शत्रुता बढ़ती जा रही थी। सन् 1914 में आस्ट्रिया के राजकुमार की हत्या हुई और आस्ट्रिया ने इसका आरोप सर्बिया पर लगाया तथा युद्ध की घोषण कर दी किन्तु जर्मनी सम्राट ने आस्ट्रिया का पक्ष लेकर इस स्थिति को और बिगाड़ दिया

तथा इस युद्ध ने विश्वव्यापी युद्ध का स्वरूप धारण कर लया। इस प्रकार विलियम द्वितीय की विश्व राजनीति को प्रथम विश्वयुद्ध के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है।

4.6 शब्दावली

समाजवाद

वह राजनीतिक तथा आर्थिक विचारधारा जिसमें सत्ता या स्वामित्व किसी व्यक्ति विशेष में समाहित न होकर सामूहिक रूप से समाज में निहित हो।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

(a) ×

(b) ✓

(c) ✓

(d) ✓

इकाई 5 प्रथम विश्वयुद्ध

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 प्रथम विश्वयुद्ध के कारण

5.3.1 प्रथम विश्वयुद्ध की प्रगति

5.3.2 प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम

5.4 पेरिस शान्ति सम्मेलन और पेरिस की सन्धि

5.5 बोध प्रश्न

5.6 शब्दावली

5.7 सारांश

5.1 उद्देश्य

इस इकाई में प्रथम विश्वयुद्ध की विस्तृत चर्चा की गई है। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने के विभिन्न कारणों, प्रगति तथा परिणामों पर चर्चा के साथ–साथ पेरिस शान्ति सम्मेलन के विषय में भी जानकारी की चर्चा प्रस्तुत की गई है।

इस इकाई में आप जान सकेगें :

- प्रथम विश्वयुद्ध के कारण, प्रगति एवं परिणाम।
- युद्ध के बाद की शान्ति व्यवस्था (पेरिस शान्ति सम्मेलन)

5.2 प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में यूरोपीय महाद्वीप का राजनीतिक वातावरण तनावपूर्ण हो गया था। सभी देश एक दूसरे की शक्ति से भयभीत होकर अपनी सुरक्षा के लिए मित्र–देशों के साथ कूटनीतिक व गुप्त सन्धियाँ करने में व्यस्थ थे। पूर्वी समस्या का स्वरूप भी विकृत व जटिल हो गया था। सैनिक–शक्ति का विकास, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, उग्र–राष्ट्रवाद आदि के फलस्वरूप विभिन्न देशों के मध्य मनमुटाव, अविश्वास व शत्रुता का वातावरण उत्पन्न हो गया था। इन सब परिस्थितियों ने मिलकर सन् 1914 में एक ऐसी घटना को जन्म दिया जिसने समस्त विश्व को अपनी आग की लपटों से घेर लिया था और पूरा विश्व दो खेमों में बंट गया। इस युद्ध को प्रथम विश्वयुद्ध के नाम से जाना गया।

5.3 प्रथम विश्वयुद्ध के कारण

प्रथम विश्वयुद्ध कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि ऐसे अनेक कारण व परिस्थितियाँ थी जिन्होंने इस युद्ध की पृष्ठभूमि का निर्माण किया। गुप्त एवं कूटनीतिक सन्धियों के फलस्वरूप सन् 1907 में यूरोपीय शक्तियाँ दो विशेष सैनिक शिविरों में विभाजित हो गई। इन विरोधी गुटों में शत्रुता बढ़ाने में बाल्कन संकट में सहयोग प्रदान किया। अन्ततः यूरोपीय शक्तियों के मध्य सन् 1914 में युद्ध का विस्फोट हो गया। उसे शीघ्र ही पूरे विश्व को इस आग ने अपनी लपटों में घेर लिया। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रमुख कारण निम्न थे–

गुप्त एवं कूटनीतिक सन्धियाँ

यूरोपीय शक्तियों के मध्य सम्पन्न गुप्त एवं कूटनीतिक सन्धियाँ प्रथम विश्वयुद्ध का प्रमुख कारण थी। बिस्मार्क प्रथम व्यक्ति था जिसने सन्धियों के क्रम को प्रारम्भ किया। उसने फ्रांस को यूरोपीय राजनीति में एकाकी बनाने, यूरोप महाद्वीप में शान्ति स्थापित करने तथा जर्मनी की स्थिति को सुरक्षित बनाये रखने के लिए रूस, आस्ट्रिया, इटली, रूमानिया आदि के साथ कूटनीतिक सन्धियाँ की तथा जर्मनी के हित में गुटबन्दी प्रारम्भ की। बिस्मार्क के पतन के बाद भी गुटबन्दी का यह क्रम निरन्तर चलता रहा। सन् 1894 में रूस व फ्रांस के मध्य द्विवर्गी सन्धि हुई। उधर जर्मनी के सम्राट विलियम द्वितीय की विश्व राजनीतिक के फलस्वरूप इंग्लैण्ड को अपनी शानदार पृथक्करण की नीति को त्यागने को विवश होना पड़ा और उसने भी जापान, फ्रांस व रूस के साथ सन्धियाँ की। इस प्रकार आस्ट्रिया, जर्मनी व इटली त्रिगुट के विरूद्ध इंग्लैण्ड, रूस, फ्रांस के शक्तिशाली गुट का निर्माण हुआ। इन गुटों के मध्य शत्रुता, कटुता व वैमनस्यता की भावना निरन्तर बढ़ती गयी जिसके फलस्वरूप विश्वयुद्ध की पृथक्करण का निर्माण हुआ।

उग्र–राष्ट्रवाद की भावना

विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व उग्र राष्ट्रवाद की भावना यूरोप के लगभग सभी देशों में विकसित हो चुकी थी। प्रत्येक देश के निवासी केवल अपने देश से प्रेम करते थे। इसमें जर्मनी सबसे आगे था। वास्तव में यह भावना विश्व–शन्ति व अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए खतरों का संकेत थी। इसी भावना से प्रेरित होकर फ्रांस अपने खोये प्रान्त अल्सास व लॉरेन को प्राप्त करने को आतुर था। बाल्कन राज्यों की राजनीति पर भी उग्र राष्ट्रवाद की भावना का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार इंग्लैण्ड व जर्मनी के मध्य तनाव कटुता उत्पन्न करने में भी इस भावना की विशेष भूमिका थी।

उग्र सैनिकवाद की भावना का विकास

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप के लगभग सभी देशों ने अपनी सैनिक–शक्ति को विकसित करने का प्रयास किया। सन् 1890 के पश्चात् जर्मनी द्वारा इंग्लैण्ड की जल–शक्ति की तुलना में अपनी जल–सेना को अधिक विस्तृत करने की घोषणा के साथ ही दोनों देशों में शत्रुता का उदय होने लगा और बड़े पैमाने पर विनाशकारी हथियारों एवं अस्त्र–शस्त्रों की होड़ शुरू हो गयी तथा जर्मनी की विश्वशक्ति बनने की इच्छा ने भी उग्र सैनिकवादी स्वरूप को स्पष्ट कर दिया।

साम्राज्यवाद

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप सभी देशों की उत्पादन प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। मशीनों के आविष्कार और अतिरिक्त उत्पादन से तीन समस्याओं का उदय हुआ–प्रथम कच्चा माल प्राप्त करने के लिए नवीन क्षेत्रों की खोज, द्वितीय निर्मित

वस्तुओं की बिक्री के लिए नवीन बाजारों की खोज, तृतीय औद्योगिक क्षेत्रों की बढ़ती हुई जनसंख्या को अन्य क्षेत्रों में स्थानान्तरित करना।

उपर्युक्त समस्याओं का समाधान करने के लिए यूरोपीय देशों का ध्यान अफ्रीका, एशिया, अमेरिका, व बाल्कन राज्यों में नवीन क्षेत्रों की खोज करने की ओर आकर्षित हुआ। साम्राज्य विस्तार की भावना से प्रेरित होकर सभी देश एक दूसरे को शंका अविश्वास, घृणा व कटुता की दृष्टि से देखने लगे अन्ततः यह भावना प्रथम विश्वयुद्ध का कारण बनी।

पूर्वी समस्या के प्रति जर्मनी की नीति

जर्मन सम्राट विलियम द्वितीय द्वारा टर्की तथा अन्य पूर्वी राज्यों के प्रति अपनायी गयी नीति भी विश्वयुद्ध के लिए उत्तरदायी थी। जर्मनी को विश्वशक्ति बनाने के उद्देश्य से विलियम द्वितीय ने पूर्वी समस्या में रूचि लेना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में जर्मनी बर्लिन–बगदाद रेलवे लाइन निर्माण की अनुमति टर्की से प्राप्त करना चाहता था क्योंकि इससे जर्मनी व्यापारिक विकास में सहायता मिलेगी, लेकिन इसका इंग्लैण्ड ने विरोध किया क्योंकि इससे इंग्लैण्ड के भारत तथा एशिया के अन्य स्थानों पर स्थित ब्रिटिश साम्राज्य को खतरा उत्पन्न हो सकता था, किन्तु तमाम विरोधों के बावजूद जर्मनी ने टर्की से अनुमति प्राप्त कर ली। इस प्रकार पूर्वी समस्या के प्रति जर्मनी की नीति ने यूरोपीय शक्तियों के मध्य शत्रुता उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बाल्कन राज्य की समस्या

बोसनिया–हर्जेगोविना के प्रश्न ने बाल्कन–राजनीति को अधिक जटिल बना दिया। ये प्रदेश मूलतः टर्की साम्राज्य में स्थित थे। सन् 1878 की बर्लिन सन्धि के अनुसार इन प्रदेशों के प्रशासन का अधिकार आस्ट्रिया को प्राप्त हो गया था किन्तु वह इन राज्यों को अपने साम्राज्य में विलीन नहीं कर सकता था। लेकिन सन् 1908 में आस्ट्रिया ने उक्त प्रदेशों को अपने साम्राज्य में मिलाने की घोषणा कर दी। जिसकी सर्बिया राज्य ने कटु आलोचना की।

इस प्रकार बोसनिया–हर्जेगोविना की समस्या ने आस्ट्रिया और सर्बिया के मध्य शत्रुता को जन्म दिया और सम्पूर्ण यूरोप के राजनीतिक वातावरण को प्रभावित किया। इस समस्या में जर्मनी नें अपने निहित स्वार्थों के कारण आस्ट्रिया का समर्थन किया।

कैसर विलियम द्वितीय का चरित्र

सम्राट बनने के बाद विलियम द्वितीय ने जर्मनी की आन्तरिक व वैदेशिक नीतियों ने अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। वह चाहता था कि विश्व राजनीति में जर्मनी की निर्णायक भूमिका होनी चाहिए। उसने 'पान–जर्मन लीग' (Pan-German League) की स्थापना की जिसका उद्देश्य आस्ट्रिया, स्विटजरलैण्ड, बेल्जियम, हॉलैण्ड तथा अन्य देशों में निवास करने वाले जर्मन जाति के लोगों को संगठित करना था।

विलियम द्वितीय के विभिन्न कार्यों से अन्य देशों विशेषकर इंग्लैण्ड के साथ जर्मनी के सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये। इंग्लैण्ड नहीं चाहता था कि जल सेना के मामले में अन्य कोई देश उसका मुकबला करे। अतः जर्मन सम्राट की महत्वाकांक्षाओं पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए इंग्लैण्ड को शानदार पृथक्करण की नीति त्यागकर जापान, फ्रांस, रूस आदि देशों के साथ सन्धियाँ करने को विवश होना पड़ा, जिसके फलस्वरूप यूरोप दो विरोधी गुटों में विभाजित हो गया। एक गुट का नेतृत्व जर्मनी जबकि दूसरे गुट का नेतृत्व इंग्लैण्ड कर रहा था।

अल्सास–लॉरेन की समस्या

इन प्रदेशों को लेकर जर्मनी और फ्रांस के मध्य लम्बे समय से संघर्ष चल रहा था। औद्योगिक दृष्टि से ये दोनों प्रदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। इसलिए फ्रांस इन प्रदेशों पर अधिकार स्थापित करना चाहता था। फ्रांस की जनता इन प्रदेशों को हर कीमत पर जर्मनी से वापस लेने की मांग करने लगी। इस समस्या को लेकर फ्रांस में कटुता बढ़ती जा रही थी।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का अभाव

उस समय ऐसी कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का अभाव था जो युद्ध की सम्भावनाओं को टालने का प्रयास करती थी। प्रत्येक देश अपनी निजी नीति का पालन करता था। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण यूरोप में सन्देह एवं अविश्वास का वातावरण उत्पन्न हो गया था।

युद्ध का तात्कालिक कारण

उपर्युक्त परिस्थितियों के फलस्वरूप सम्पूर्ण यूरोप में अशान्ति के चिह्न दिखायी देने लगे थे। इस बारूद में केवल एक चिनगारी की आवश्यकता थी और इस चिनगारी का काम आस्ट्रिया के राजकुमार की हत्या ने कर दिया। 28 जून 1914 में आस्ट्रिया के सम्राट के भतीजे और सिंहासन के उत्तराधिकारी आर्क ऑफ फ्रान्सिस फर्डीनेन्ड की हत्या बोसनिया में कर दी गई। इसका आरोप सार्बिया पर लगाया गया।

आस्ट्रिया और सर्बिया के सम्बन्ध बोसनिया ओर हर्जेइगोविना के प्रश्न पर पहले से ही खराब थे अतः आस्ट्रिया को प्रतिशोध लेने का मौका मिल गया और 28 जुलाई 1914 को आस्ट्रिया ने सर्बिया पर हमला कर दिया। जर्मनी ने आस्ट्रिया का पक्ष लिया। तीन दिन बाद रूस ने आस्ट्रिया के विश्वयुद्ध की घोषणा कर दी।

चूंकि फ्रांस व रूस मित्र थे अतः उसने भी जर्मनी व आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध घोषित कर दिया। 5 अगस्त 1914 को ब्रिटेन भी इस युद्ध में शामिल हो गया।

5.3.1 प्रथम विश्वयुद्ध की प्रगति

यह युद्धाग्नि जंगल की आग की तरह फैल गयी और ये केवल यूरोप तक ही सीमित नहीं रही। इस युद्ध को प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध कहा गया क्योंकि इसकी उत्पत्ति के मूल में यूरोपीय साम्राज्यवादी देशों के बीच कटु प्रतिद्वन्द्विता थी।

इस महायुद्ध का क्षेत्र केवल यूरोप तक ही सीमित नहीं रहा क्योंकि ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, रूस आदि देशों के साम्राज्य दूर–दूर तक फैले थे और यह स्वाभाविक भी था कि वे भी इस युद्ध में शामिल हो तथा अपनी इच्छा के विरूद्ध भी इन उपनिवेशों को युद्ध में शामिल होना पड़ा। अब सारा संसार दो गुटों में विभाजित हो गया था। एक गुट का नेता जर्मनी था जिसे ध्रुवीय राष्ट्र कहा गया। दूसरा गुट जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस, रूस आदि देश थे उन्हें मित्र राष्ट्र कहा गया। 23 अगस्त को जापान भी मित्र राष्ट्रों के पक्ष में जर्मनी के विरूद्ध युद्ध में शामिल हो गया तथा 3 नवम्बर को तुर्की साम्राज्य ध्रुवीय देशों के पक्ष में शामिल हो गया। इससे मित्र राष्ट्रों का पलड़ा कुछ हल्का पड़ गया लेकिन शीघ्र ही इटली मित्रराष्ट्र की तरफ से युद्ध में शामिल हो गया और त्रिगुट से निकलने की घोषणा कर दी। यह युद्ध सन् 1914 से प्रारम्भ होकर सन् 1918 तक चला। यह विभिन्न स्थानों पर लड़ा गया था जिसकी मुख्य घटनाएं निम्न थीं–

पश्चिमी मोर्चा

इस क्षेत्र में जर्मनी की युद्ध योजना का मुख्य लक्ष्य फ्रांस पर अधिकार करना था। इस लक्ष्य में सफलता प्राप्त करने के लिए जर्मनी ने सर्वप्रथम बेल्जियम पर अधिकार करने के लिए अपनी सेनाओं को आदेश दिया और 1914 अगस्त को जर्मनी का बेल्जियम पर अधिकार हो गया। उत्साहित होकर जर्मनी की सेनाएं फ्रांस की राजधानी पेरिस की ओर बढ़ने लगी और लगभग सम्पूर्ण उत्तरी फ्रांस पर जर्मनी का अधिकार हो गया। जर्मनी और फ्रांसीसी क्षेत्र के मध्य माने का युद्ध प्रसिद्ध है जिसमें जर्मन बुरी तरफ पराजित हुए। इसी प्रकार न्यो चैचल तथा सोमे का युद्ध भी इस मोर्चे के प्रसिद्ध युद्ध हैं। सोमे युद्ध के फलस्वरूप मित्रराष्ट्रों की सेना पर जर्मनी का दबाव कम हो गया।

पूर्वी मोर्चे पर युद्ध की घटनाएँ

जब पश्चिमी मोर्चे पर जर्मनी फ्रांस पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था उसी समय अगस्त 1914 में रूस ने पूर्वी प्रशा पर आक्रमण कर दिया। इस घटना के परिणामस्वरूप जर्मनी को पश्चिमी क्षेत्र से अपनी सेना हटाने को विवश होना पड़ा। लेकिन रूस की सफलता क्षणिक सिद्ध हुई। जर्मनी ने रूस को पराजित कर दिया और रूस को जीते हुए क्षेत्रों से भी हटना पड़ा और अपनी भूमि का कुछ भाग भी जर्मनी को देना पड़ा।

आस्ट्रिया पर रूस का आक्रमण

सितम्बर 1914 को रूस ने आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया। आस्ट्रिया को कई स्थानों पर पराजित होना पड़ा। लेकिन जर्मनी के हस्तक्षेप के कारण रूस को आस्ट्रिया के विरूद्ध अभियान में सफलता नहीं मिल सकी।

लेकिन शीघ्र ही रूस ने जून 1916 को पुनः आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया। इस बार भी जर्मनी के कारण रूसी विजय सम्भव न हो सकी। रूस की क्रोधित जनता ने युद्ध की पराजय के लिए जार शासन को दोषी ठहराया और मार्च 1917 को जनता ने जार शासन के विरूद्ध क्रान्ति कर दी जिसने रूस के इतिहास को नवीन दिशा प्रदान की।

दक्षिणी–पूर्वी मोर्चे पर युद्ध की घटनाएँ

2 नवम्बर 1914 को टर्की साम्राज्य ने जर्मनी के समर्थन में युद्ध में प्रवेश किया। रूस ने टर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी क्योंकि टर्की कालासागर में पहुँच कर रूसी बन्दरगाहों पर गोलाबारी कर सकता था। रूस के इस कार्य को इंग्लैण्ड और फ्रांस ने समर्थन किया।

विश्वयुद्ध में बुल्गेरिया का प्रवेश

दक्षिण–पूर्वी मोर्चे पर मित्रराष्ट्रों की असफलता का बाल्कन प्रायद्वीप की राजनीति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। प्रोत्साहित होकर बुल्गेरिया ने अक्टूबर 1915 में जर्मनी के पक्ष में युद्ध में प्रवेश किया। इस घोषणा के दो परिणाम सामने आये–

(i)टर्की के साथ केन्द्रीय शक्तियों (जर्मनी, आस्ट्रिया)

(ii)सर्बिया का पतन निश्चित हो गया।

रूमानिया की पराजय

रूमानिया मित्रराष्ट्रों के पक्ष में अगस्त 1916 को युद्ध में सम्मिलित हुआ। सितम्बर 1916 को जर्मन सेना ने रूमानिया पर आक्रमण कर रूमानिया के लगभग सम्पूर्ण दक्षिणी भाग पर अधिकार कर लिया।

5.3.2 प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम

समुद्री मोर्चे पर युद्ध की घटनाएँ

कुछ इतिहासकारों का मत है कि प्रथम विश्वयुद्ध के सभी मोर्चों में समुद्री मोर्चा सबसे बड़ा था। इंग्लैण्ड और जर्मनी के मध्य समुद्री मोर्चे पर सर्वाधिक विख्यात युद्ध जूट लैण्ड का युद्ध था। इस युद्ध में ब्रिटिश जलपोतों का बड़ी संख्या में विनाश हुआ। लेकिन इस युद्ध का कोई परिणाम नहीं निकला।

दक्षिणी मोर्चे (इटली) पर युद्ध की घटनाएँ

प्रारम्भ में इटली इस युद्ध से तटस्थ रहने का निश्चय किया किन्तु बाद में इटली ने मित्रराष्ट्रों (इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस) के समर्थन में युद्ध में शामिल हो गया। विभिन्न स्थानों पर इटली की जर्मनी और आस्ट्रिया सेना का सामना करना पड़ा। सन् 1918 में आस्ट्रिया सेना को विभिन्न मोर्चों पर पराजित होना पड़ा। सन नवम्बर 1918 को आस्ट्रिया ने मित्रराष्ट्रों के समक्ष बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया।

अमेरिका का युद्ध में प्रवेश

प्रथम विश्वयुद्ध में अमेरिका के प्रवेश की घोषणा विश्व के इतिहास में वर्ष 1917 की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। युद्ध में जर्मनी की विनाशकारी नीति के काररण अमेरिका को यह अप्रिय व दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय लेना पड़ा। अमेरिका के सम्मिलित होने से मित्रराष्ट्रों की स्थिति अत्यधिक मजबूत हो गये।

रूस में बोल्शेविक क्रान्ति (1917)

सन् 1915 व 1916 में पूर्वी मोर्चे पर रूस केन्द्रीय शक्तियों द्वारा बुरी तरह पराजित हुआ था। अतः जार शासन के विरूद्ध वहाँ की जनता क्रान्ति कर दी और 7 नवम्बर 1917 की लेनिन के नेत्व में बोल्शेविकी ने सरकार पर पूरा नियन्त्रण स्थापित कर लिया। बोल्शेविक सरकार ने केन्द्रीय शक्तियों के साथ सन्धि वार्ता प्रारम्भ की जिसके आधार पर रूस का कुछ भाग केन्द्रीय शक्तियों को देना पड़ा। जिससे मित्रराष्ट्र की शक्ति को गहरा आघात लगा।

बुल्गेरिया द्वारा आत्म समर्पण

बल्गेरिया टर्की का एक महत्वपूर्ण राज्य था। 29 सितम्बर 1919 को बल्गेरिया ने मित्रराष्ट्रों के समक्ष बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। इस घटना से केन्द्रीय शक्तियों को गहरा आघात लगा क्योंकि इससे बर्लिन–बगदाद रेलवे लाइन के निर्माण करने की योजना में अनुरोध उत्पन्न हो गया तथा जर्मनी व टर्की के मध्य यातायात व संचार की सुविधा समाप्त हो गयी।

5.4 पेरिस शान्ति सम्मेलन और पेरिस की सन्धि

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद युद्ध में भाग लेने वाली प्रमुख शक्तियों नें एक सम्मेलन का आयोजन किया। जिसका उद्देश्य शान्ति व्यवस्था स्थापित करना था जिसमें विश्व मानचित्र को पुर्नव्यवस्थित किया गया लेकिन इसका प्रमुख उद्देश्य में पराजित राष्ट्रों को दण्ड देना भी था। इस सम्मेलन में राष्ट्रसंघ के निर्माण का निर्णय लिया गया एवं पराजित राज्यों के साथ पाँच शान्ति संधियाँ हुईं इन्हीं संधियों को पेरिस सन्धि के नाम से जानते हैं। इसमें मुख्य रूप से ब्रिटेन एवं फ्रांस को जर्मनी के विदेशी क्षेत्रों को प्रदान करता था। साथ ही साथ जर्मन पर जुर्माना थोपना था। इस सम्मेलन के अंतर्गत 5 शांति संधियाँ तैयार की गई थीं जो निम्नवत हैं।

- वर्साय की संधि।
- सेंट जर्मेन की संधि।
- न्यूली की संधि।
- ट्रायोन की संधि।
- सेवर्स की संधि।

5.5 बोध प्रश्न

प्र0–1 प्रथम विश्व युद्ध के कारणों एवं प्रभावों का वर्णन कीजिए

.....

.....

प्र0–2 राष्ट्रवाद के उदय के प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

5.6 शब्दावली

साम्राज्यवाद– यह एक ऐसी विचारधारा है जिसमें एक साम्राज्य दूसरे स्वतंत्र देश को अपने अधीन करने का प्रयास करता है। मूलतः सम्राज्य का विस्तार चाहता है।

5.7 सारांश

बीसवीं शताब्दी का काल यूरोपीय जगत में राजनीतिक संक्रमण का काल था जिसमें विभिन्न राष्ट्र अपनी सुरक्षा एवं शक्ति के लिए विभिन्न प्रकार की नीतियों का अनुसरण करने में संलग्न थे। ऐसी स्थिति में सैनिक–शक्ति का विकास, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, उग्र–राष्ट्रवाद आदि के फलस्वरूप विभिन्न देशों के मध्य मनमुटाव, अविश्वास व शत्रुता का वातावरण उत्पन्न हो गया था। इन सब परिस्थितियों ने मिलकर सन् 1914 में एक ऐसी घटना को जन्म दिया जिसने समस्त विश्व को अपनी आग की लपटों से घेर लिया था और पूरा विश्व दो खेमों में बंट गया। इस युद्ध को प्रथम विश्वयुद्ध के नाम से जाना गया।

MAHY-106 (N) Part-I

आधुनिक विश्व (1870 ई० से 2000 ई०)

खण्ड – 3

प्रथम विश्व युद्ध के बाद की राजनीति

इकाई – 1

पेरिस शान्ति सम्मेलन

इकाई – 2

राष्ट्र संघ का निर्माण

इकाई – 3

रूस की क्रान्ति तथा नवीन आर्थिक नीति

इकाई – 4

आधुनिक तुर्की का निर्माण

इकाई – 5

प्रथम विश्व युद्ध के बाद एशिया

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज

MAHY-106 (N)

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	मा0 कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक एवं आचार्य इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो.. उमाशंकर गुप्ता	आचार्य, इतिहास राजकीय महाविद्यालय, जक्खिनी, वाराणसी प्रथम खंड (1–5 इकाई)
डॉ. अर्चना सिंह	सह आचार्य, इतिहास काशी नरेश राजकीय महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोहीं द्वितीय खंड (1–5 इकाई)
प्रो. अनुभा श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास बीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी तृतीय खंड (1–5 इकाई)

सम्पादक

प्रो0 पी0 एल0 विश्वकर्मा	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज वर्ष–2023

ISBN :978-93-94487-89-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

इकाई–1

पेरिस शान्ति सम्मेलन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सम्मेलन का प्रारम्भ

1.3 सम्मेलन के कर्णधार

- **1.3.1** विल्सन
- **1.3.2** लॉयड जार्ज
- **1.3.3** क्लीमेंशों
- **1.3.4** ऑरलेन्डो

1.4 विल्सन के चौदह सूत्र

1.5 पेरिस सम्मेलन की संधियॉ

- **1.5.1** वर्साय की सन्धि
- **1.5.2** सेण्ट जर्मेन की सन्धि
- **1.5.3** न्यूली की सन्धि
- **1.5.4** त्रिआनो की सन्धि
- **1.5.5** सेब्रस की सन्धि
- **1.5.6** लोसाने की सन्धि

1.6 वर्साय सन्धि की समीक्षा

- **1.6.1** सन्धि के पक्ष में तर्क
- **1.6.2** सन्धि के दोष

1.7 सांराश

1.8 शब्दावली

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप : प्रथम विश्व युद्व की समाप्ति पर हुये शान्ति सम्मेलन के बारे में जान पायेगें।

- इस सम्मेलन में हुयी विभिन्न संधियों के बारे में जान सकेगे।
- इस सम्मेलन के प्रमुख व्यक्तियों के वारे में जान सकेगें।
- विल्सन के चौदह सूत्रो के वारे में जान पायेगे।
- इन संधियों का विश्व राजनीति पर प्रभाव जान सकेगें।

1.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्व के समाप्त होने पर पेरिस में विजयी राष्ट्रों का सम्मेलन आरम्भ हुआ। सम्मेलन के समक्ष अनेक समस्यायें थी। मुख्य समस्या युद्व से क्षत–विक्षत यूरोप का पुनर्निमाण करना तथा स्थायी रूप से शान्ति स्थापित करना थी। इसके लिये 32 देशों के प्रतिनिधियों को 1037 प्रतिनिधि एकत्र हुये इनमें पराजित देशो के प्रतिनिधियों को आमंत्रित नही किया गया था। इस सम्मेलन में घृणा, द्वेष, स्वार्थो का इतना व्यापक प्रभाव था कि निष्पक्ष और न्यायोजित व्यवस्था करना अत्यन्त कठिन था।

1.2 सम्मेलन का प्रारम्भ

फ्रांस की राजधानी पेरिस में शांति सम्मेलन का प्रारम्भ 18 जनवरी 1919 को वर्साय के शाही महल में हुआ। प्रत्येक देश के प्रतिनिधियों के साथ कूटनीतिज्ञ, सहायक, कानूनी सलाहकार व सम्वाददाता आदि भी आये थे। फ्रांस के राष्ट्रपति पाइनकरे ने इस सम्मेलन का उदघाटन किया था। उसने अपने उदघाटन भाषण में न्याय आत्मनिर्णय व राष्ट्रसंघ की स्थानपा पर विशेष बल दिया था। फ्रांस के ही प्रधानमंत्री क्लीमेंशो को सर्वसम्मति से इस सम्मेलन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था।

सम्मेलन में अनेको समितियॉ गठित की गयी। अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन को इन सभी समितियों का अध्यक्ष बनाया गया। किन्तु प्रतिनिधियों को किसी निष्कर्ष पर पहुॅचने में सफलता नही मिली। इस परिषद में बडे पांच देशों – इग्लैडं, फ्रांस, अमेरिका, इटली तथा जापान के दो–दो प्रतिनिधयों को शामिल किया गया। परन्तु यह दस सदस्यों की परिषद भी कूटनीतिक कार्य के कुशल सम्पादन के लिये उपयुक्त प्रतीत नही हुई। अतः इस परिषद को भी भंग करके मार्च 1919 में चार सदस्यों की एक समिति का गठन किया गया। इस समिति में चार बडे देशों के केवल चार प्रतिनिधियों की सम्मिलित किये गये थे प्रतिनिधि निम्न थे–

विल्सन (अमेरिका), लॉयड जार्ज (इंग्लैण्ड) क्लीमेशों (फ्रासं), ऑरलेन्डो (इटली) उपर्युक्त चार प्रतिनिधि इतिहास मे बडे चार (बिग फोर) के नाम से जाने

जाते है। बाद मे क्लीमेंशों एंव ऑरलेन्डो के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गये। इसलिए ऑरलेन्डो सम्मेलन

1.3 सम्मेलन के कर्णधार

पेरिस सम्मेलन के कर्णधारो का उददेश्य था – शाश्वत शान्ति की स्थापना तथा विश्व को जनतंत्र के लिए सुरक्षित बनाना। यह कार्य किसी भी सम्मेलन के लिए अत्यन्त्र कठिन था। पेरिस सम्मेलन के कर्णधारो मे राजनीतिक दूरदर्शिता और कूटनीतिक योग्यता के गुण पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान नही थे। वे यह नही समझ सके कि पराजित राष्ट्रो के साथ कठोर व्यवहार करने से स्थायी शान्ति स्थापित नही की जा सकती है। इन नेताओ के व्यक्तित्व परस्पर विरोधी थे।

1.3.1 विल्सन

विल्सन संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति था। वह एक प्रतिभाशाली वक्ता तथा आदर्शवादी विचारक था। वह विश्व मे स्थायी शान्ति की स्थापना का सच्चा समर्थक था। उसका राष्ट्र सघं की स्थापना मे योगदान था। उसने विश्व मे स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए चौदह सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इसमे उसने स्पष्ट किया कि भविष्य मे विभिन्न देशो के मध्य कोई गुप्त सन्धी नही होनी चाहिए। उसने शस्त्रीकरण पर नियन्त्रण लगाने तथा पक्षपातपूर्ण निर्णयों की प्रक्रिया समाप्त करने पर भी बल दिया था। वह जनता को आत्म निर्णय का अधिकार देना चाहता था।

1.3.2 लॉयड जार्ज

लॉयड जार्ज ब्रिटिश प्रधानमंत्री था। उदार दलो का प्रमुख नेता था। वह एक यथार्थवादी , कुशाग्र बुद्वि , अथक कार्य – शक्ति वाला विनोदप्रिय राजनीतिज्ञ था। वह जर्मनी से प्रतिशोध लेना चाहता था। लेकिन वह यह भी जानता था कि ब्रिटिश व्यापार के पुनरूत्थान के लिये एक सुदृढ आर्थिक व्यवस्था वाले जर्मनी की आवश्यकता थी। अतः सम्मेलन मे जर्मनी के प्रति उसका व्यवहार इनता कठोर नही था जितना कि फ्रांस का। पेरिस शान्ति सम्मेलन मे उसने अनेको जटिल समस्याओं का समाधान किया था।

1.3.3 क्लीमेंशो

पेरिस शान्ति सम्मेलन का अध्यक्ष फ्रेंच प्रधानमंत्री क्लीमेंशों पराजित राष्ट्रो के साथ कठोर व्यवहार के लिये सर्वाधिक उत्तरदायी था। वह 77 वर्षीय था व उसे , बूढा शेर , कहा जाता था। वह सम्मेलन का सर्वाधिक कुशल कूटनीतिज्ञ था। उसका एक मात्र उददेश्य जर्मनी का इतना दमन करना था कि वह फिर कभी फ्रांस के लिये संकट न बन सके।

1.3.4 ऑरलेन्डो

ऑरलेन्डो इटली का प्रधानमंत्री था वह एक विद्वान तथा कुशल राजनीतिज्ञ था। पेरिस सम्मेलन मे उसका एक ही उददेश्य था – इटली के लिए अधिकाधिक सुविधायें और प्रदेय प्राप्त करना।

1.4 विल्सन के चौदह सूत्र

पेरिस की सन्धि का आधार विल्सन के चौदह सूत्रीय योजना था। विल्सन ने 8 जनवरी 1918 को उन सिद्वान्तों की घोषणा की जिनके आधार पर न्यायोजित शान्ति स्थापित करना अमेरिका का उददेश्य था। विल्सन के चौदह सूत्र निम्नलिखित थे। छोडकर

इटली लौट गया। इस प्रकार पेरिस शांति सम्मेलन के मुख्य निर्णय तीन महान राजनीतिज्ञों – विल्सन , लायड जार्ज एंव क्लीमेंशों द्वारा ही लिये गये थे।

1. भविष्य में गुप्त सन्धियॉ न की जायें।

2. शान्ति और युद्व दोनों कालों में समुद्र सबके लिये खुले रहे।

3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रादेशिक नियन्त्रण तथा प्रतिबन्ध हटा दिये जायें।

4. सभी राष्ट्रनिशस्त्रीकरण करें।

5. उपनिवेशों के दावों के बारे में सभी निर्णय निष्पक्ष रूप से किये जायें और उनके निवासियों के हितो का ध्यान में रखा जायें।

6. रूस के क्षेत्र से विदेशी सेनाओं को हटाया जाये और वहॉ के निवासियों को अपने भविष्य का निर्णय स्वतन्त्रतापूर्वक करने दिया था।

7. वेल्जियम से विदेशी सेनायें हटा ली जायें।

8. फ्रांस को 1871 में उससे छीने गये अल्लास और लारेन के प्रदेश वापस कर दिये जाये।

9. इटली की सीमाओं को राष्ट्रीयता के आधार पर फिर से निर्धारित किया जायें।

10. आस्ट्रिया–हंगरी की जनता को स्वतन्त्र विकास का पूरा अवसर दिया जाये।

11. रूमानिया, सर्विया और मान्टीनीग्रो से विदेशी सेनायें हटा ली जाये और सार्विया को निर्बाध और सुरक्षित समुद्री मार्ग दिया जायें।

12. तुर्की साम्राज्य मे गैर – तुर्क जनता को स्वतन्त्रता दी जाये। डार्डेनिलीज को अन्तराष्टीय नियन्त्रण मे रखा जाये।

13. स्वतन्त्र पोलैण्ड का निर्माण किया जाये और उसे सपुद्र तक मार्ग दिया जाये।

14. समस्त छोटे बडे राष्ट्रो का सामान्य संगठन बनाया जाये जो सदस्य राष्ट्रो को स्वतन्त्रता और क्षेत्रीय अखण्डता का आश्वासन दे।

(क) पेरिस शान्ति सम्मेलन का अध्यक्ष कौन था।

1. विल्सन **2.** क्लीमेंशों

3. लॉयड जार्ज **4.** ऑरलेन्डो

(ख) विल्सन राष्ट्रपति था।

1. इग्लैण्ड
2. जर्मनी
3. अमेरिका
4. फ्रांस

(ग) विल्सन के बारे मे आप क्या समझते है।

.....

.....

.....

.....

1.5 पेरिस सम्मेलन की संधियॉ

1.5.1. वर्साय की सन्धि

पेरिस शान्ति सम्मेलन की सन्धियो मे वर्साय सन्धि सबसे महत्वपूर्ण है। 28 जून 1919 को जर्मनी ने वर्साय सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे। इस सन्धि पर यूरोप की सम्पूर्ण व्यवस्थ और शान्ति निर्भर था। दुर्भाग्य से यह सन्धि न्यायोचित नही थी। इस सन्धि के प्रति जर्मनी मे गहरी कटुता तथा असन्तोष बना रहा। जिसके कारण द्वितीय विश्व युद्व हुआ।

वर्साय सन्धि एक विस्तृत अभिलेख थी। इसमे 15 अध्याय थे। जिनमे 200 पृष्ठ और 80 हजार से अधिक शब्द थे। इसमे 439 अनुच्छेद थे। इस सन्धि को अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओ मे तैयार किया गया था।

वर्साय की सन्धि की प्रमुख शर्ते

(अ) राजनीतिक सीमा सम्बन्धी शर्ते

1. जर्मनी को अल्लास और लारेन के प्रदेश फ्रांस को लौटने पडे।
2. यूपेन तथा मालमेडीं का क्षेत्र , बेल्जियम को दे दिया गया।
3. पोसेन का प्रदेश पश्मिी प्रशा का अधिकांश भाग तथा ऊपरी साइलेशिया का कुछ भाग जर्मनी से छीनकर पौलेंड को सोंप दिया गया।
4. उत्तर मे जर्मनी का श्लेशबिग क्षेत्र जनमत गणना के पश्चात डेनमार्क को दे दिया गया।
5. मेमेल नगर मित्रराष्टो ने जर्मनी से ले लिया और बाद मे 1924 मे उसे लिथुआनिया को दे दिया।
6. पौलेण्ड को बाल्टिक समुद्र तक पहुॅचने के लिए एक गलियारा दिया गया।
7. डेजिग बन्दरगाह से जर्मनी का अधिकार समाप्त करके इसे राष्ट्रसंघ के सरक्षंण मे दे दिया गया।

8. जर्मनी को कोयला खानो से सम्पन्न सार फ्रांस को देना पडा। इसका प्रशासन 15 वर्षो तक राष्ट्र संघ के अन्तर्गत रखा गया। इसके पश्चात इस क्षेत्र मे जनमत गणना होनी थी।

9. शान्तुंग के प्रश्न पर भी पेरिस सम्मेलन मे पर्याप्त मतभेद उत्पन्न हो गया था।अन्त मे शान्तुंग के आर्थिक अधिकार जापान को और राजनीतिक अधिकार चीन को प्रदान किये गये।

10. जर्मनी ने बेल्जियम,पौलेण्ड तथा चेकोस्लाविया की स्वतन्त्र राष्ट्रीयता को सदैव के लिय स्वीकार किया।

11. चीन, तुर्की, मिस्श्र, मोस्को ओर बुल्गेरिया मे जर्मनी के अधिकारो को समाप्त कर दिया गया।

12. जर्मनी के सभी उपनिवेश छीन लिए गये तथा मेंडेट व्यवस्था के आधार पर मित्रराष्ट्रो के मध्य उनका वितरण कर दिया गया। जर्मनी से कुल 90 लाख वर्ग मील क्षेत्र के उपनिवेश ले लिये गये।

(ब) सैनिक शर्ते

जर्मनी की अधिकतम सैनिक संख्या एक लाख निश्चित कर दी गयी। टैंक बस्तरबन्द गाडियों, सैनिक हवाई जहाजो पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जर्मन नौसेना मे 6 बडे जहाज, 6 छोटे जहाज 12 विध्वंसक और 12 तारपीडो नाव रखी गयी। जर्मन जनरल स्टार भंग कर दिया गया। जर्मनी पनडुब्बी नही रख सकता था।

राइन नदी के बायें तटीय क्षेत्र का विसैन्यीकरण कि कि गया। हेलिगोलैण्ड की किलेबन्दी नष्ट कर दी गई। जर्मनी बाल्टिक तट और उत्तरी सागर तट पर किले बन्दी नही कर सकता था। सैनिक शर्तो की कटोरता के बारे मे कार लिखता था। '' जिस प्रकार से पूर्ण निशस्त्रीकरण किया गया था, वैसा उदाहरण लिखित इतिहास मे कहीं प्राप्त नही होता। ''

(स) आर्थिक शर्ते

वर्साय सन्धि की धारा 231 में जर्मनी को युद्व की क्षतिपूर्ति देने के लिये बाध्य किया गया था। लेकिन मित्रराष्ट्र जर्मनी से अधिकतम धनराशि(नकद एवं वस्तु के रूप में) बसूल करना चाहते थे जिससे क्षतिपूर्ति की कुल राशि निश्चित करना सम्भव नही हो पा रहा था। अतः इसके लिये एक आयोग नियुक्त किया गया। जर्मनी को आदेश दिया गया कि वह 1921 ई0 तक 1 अरब पौंड का भुगतान कर दें। इस निर्णय के अनुसार जर्मनी ने अपने सभी व्यापारिक जहाज बडी संख्या में गाये, बैल, भेडे, घोडे तथा कोयला आदि मित्र राष्ट्रों को सौप दिया।

1.5.2 सेण्ट जर्मेन की सन्धि

सेण्ट जर्मेन की सन्धि अस्ट्रिया के साथ दिनॉक 10 सितम्बर 1919 को की गई। वर्साय सन्धि के समान इसमें भी राष्ट्रसंघ की संविदा, युद्व अपराध आदि का उल्लेख था। आस्ट्रिया की सेना की शक्ति 30,000 निश्चित की गई। आस्ट्रिया तथा जर्मनी के एक संघ के निर्माण का निषेध कर दिया गया। आत्मनिर्णय का

सिद्वान्त आस्ट्रिया के साम्राज्य पर लागू किया गया। इसके फलस्वरूप विशाल प्रदेश इससे पृथक हो गये आस्ट्रिया का क्षेत्रफल 1.84.000 वर्ग कि0मी0 से घटकर 51200कि0मी0 तथा जनसंख्या तीन करोड के स्थान पर 65 लाख रह गयी। आस्ट्रिया को हंगरी, पोलैण्ड और चेकोस्लोवाकिग के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करना पडा। आर्थिक दृष्टि से आस्ट्रिया इतना दुर्बल हो गया कि राष्ट्रसंघ को उसकी सहायता करनी पडी।

1.5.3 न्यूली की सन्धि

न्यूली की सन्धि वल्गारिया के साथ 27 नवम्बर 1919 को सम्पन्न हुई थी। पश्चिमी बल्गारिया का कुछ भाग यूगोस्लाविया कों दे दिया गया। उसे पश्चिमी थ्रेस एज्यिम तट यूनान को तथा दाब्रुज का प्रदेश रूमानिया को देना पडा उसकी सैनिक शक्ति 30.000 तक सीमित कर दी गयी। उसकी नौसेना भी अत्यन्त सीमित कर दी गयी। तथा उससे क्षतिपूर्ति की भी मॉग की गयी।

1.5.4 त्रिआनो की सन्धि

त्रिआनो की संन्धि 4 जून 1920 को हंगरी के साथ हुई थी। उसे स्लोवाकिया और रूथेनिया चेकोस्लोवाकि को क्रोशिया स्लेवोनिया और पश्चिमी बनाता। यूगोस्लाविया को तथा ट्रान्सिलवेनिया, रूमानिया को देने पडे थे। हंगरी की सैनिक शक्ति को पैंतीस हजार सैनिकों तक सीमित कर दिया गया था। उसे भी अन्य पराजित देशों की भांति क्षतिपूर्ति देने को बाध्य किया था।

1.5.5 सेब्रस की सन्धि

तुर्की के साथ सेब्रस की सन्धि 10 अगस्त 1920 को हुई थी। इस संन्धि के अनुसार तुर्की साम्राज्य को समाप्त कर दिया गया। तुर्की के खलीफा का कार्य क्षेत्र राजधानी कुस्तुनतुनियॉ के पास तक सीमित कर दिया गया। आर्मीनिया को स्वतनत्र कर दिया गया। तथा इस संन्धि को लागू नही किया जा सका क्योकि मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में तुर्क राष्ट्रवादियों ने विद्रोह कर दिया और संन्धि को अस्वीकार कर दिया।

1.5.6 लोसाने की सन्धि

तुर्की जनता के विद्रोह से विवश होकर मित्र राष्ट्रों ने मुस्तफा कमाल पाशा की राष्ट्रवादी सरकार को तुर्की की सरकार के रूप में मान्यता दे दी। अन्ततोगत्वा मित्र राष्ट्रों तथा राष्ट्रवादी तुर्की के मध्य लोसाने नामक स्थान पर 23 जुलाई 1923 को संधि सम्पन्न हुई। इस सन्धि के अनुसार तुर्की की सार्वभौम सत्ता स्वीकार की गयी। तुर्की की स्थल तथा जलसेना पर लगायी गयी सीमायें तथा उसकी वित व्यवस्था पर लगाये गये नियन्त्रण हटा लिये गये। और उससे क्षतिपूर्ति की रकम नही मांगी गई।

पेरिस शान्ति सम्मेलन की सभी संधियों मे केवल लोसाने की संधि ऐसी थी जिसकी शर्तो के दौनो पक्षो के मध्य वार्मा द्वारा निश्चित किया गया था और जिसे आरोपित संधि नही कहा जा सकता।

बोध प्रश्न – 2

(क) वर्साय की सन्धि हुयी थी।

(1) 20 जून 1919 को **(2)** 28 मई 1919

(3) 28 जून 1919 **(4)** 28 जून 1918

(ख) वर्साय सन्धि मे कुल अनुच्देद थे।

(1) 439 **(2)** 437

(3) 438 **(4)** 430

(ग) सेण्ट जर्मन की सन्धि किस देश के साथ हुई थी।

(1) हंगरी **(2)** जर्मनी

(3) फ्रांस **(4)** आस्ट्रिया

(घ) वर्साय की सन्धि की प्रमुख शर्तें कौन सी थी।

1.6 वर्साय सन्धि की समीक्षा

पेरिस के शान्ति सम्मेलन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग वर्साय की सन्धि थी। इसके अलोचको ने इसे एक अन्यायपूर्ण और कुलषित दस्तावेज कहा है। सन्धि मित्रराष्ट्रो के वास्तविक उददेश्यो का पर्दाफाश करती है। फिर भी कुछ राजनीतिज्ञो ने इस सन्धि की प्रशंसा की। गेथेर्न हार्डी का मत था कि ऐसे आदर्श स्वरूप की शान्ति सन्धि आज तक कभी नही की गयी।

1.6.1. सन्धि के पक्षपात मे तर्क

(1) जिस प्रतिशोधात्मक वातावरण मे सन्धि की गई उसमे उदारता की आशा नही की जा सकती थी।

(2) सभी प्रतिनिधियो पर उनकी जनता का दबाव था। युद्व काल मे उन्हौने जनता से अनेक वायदे किये थे जिन्हे पूरा करना आवश्यक था।

(3) सभी प्रतिनिधि अपने राष्ट्रीय हितो का संरक्षण कर रहे थे।

(4) संन्धि के विभिन्न खण्डो को अलग अलग तैयार किया गया था , इसलिए उसके पूरे प्रभाव का अनुमान नही हो सका।

(5) अगर जर्मनी जीत गया होता तो वह इससे कठोर सन्धि करता जैसा कि ब्रेस्ट लिटोवस्क सन्धि से ज्ञात होता है।

1.6.2. सन्धि के दोष

(1) आरोपित सन्धि – वर्साय की सन्धि एक आरोपित या थोपी हुई सन्धि थी। इस सन्धि की शर्तो को निर्धारित करते समय जर्मनी से कोई परामर्श था वार्ता नह

की गई थी। जर्मनी की आपत्तियो की अवहेलना की गयी। जर्मनी ने मॉग की कि विल्सन के चौदह सूत्रीय कार्यक्रम को सन्धि का आधार बनाया जाय , किन्तु विजेता राष्ट्रो ने जर्मनी की इस मोम पर कोई ध्यान नही दिया। इतनी ही नही ,यद्व की धमकी देकर जर्मनी से जबरन सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिये गये। यह जर्मनी जैसे स्वाभिमानी राष्ट्र का घोर अपमान था। एक जर्मन प्रतिनिधि ने कहा था हमारा देश दबाव के कारण आत्म समर्पण कर रहा है। किन्तु जर्मनी यह कभी नही भूलेगा कि यह अन्यायपूर्ण सन्धि है।

(2) प्रतिशोधात्मक संन्धि – वर्साय की सन्धि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के नवीन सिन्द्वात पर आधारित न होकर प्रतिशोध के प्राचीन सिन्द्वात पर आधारित थी। फ्रांस का उददेश्य 1871 की पराजय का बदला लेना था। वहीं ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज के इस कथन से भी प्रतिशोध की भावना की पुष्टि होती है। कैसर को फॉसी लगा दो। जर्मनी से एक एक शिलिंग और एक एक टन का हिसाब करना है।

(3) कठोर सन्धि– संन्धि के प्रावधान अत्यन्त कठोर थे , जर्मनी की शक्ति को कम करने तथा उसके विश्वव्यापी प्रभाव को समाप्त करने का प्रयास किया गया था। उसकी सैनिक नौसैनिक शक्ति अत्यधिक कम कर दी गई थी। उसके उपनिवेश छीन लिये गये है। उसकी जहाजरानी तथा वायुशक्ति को प्रतिबन्धित कर दिया गया था। उसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नष्ट कर दिया गया था। उसकी कोयला लोहे की अधिकाश खाने छीन ली गई थी। उसके बैंको पर नियन्त्रण कर लिया गया था। मित्रराष्ट्रा को इससे भी सन्तोष नही हुआ तो उन्हौने युद्व की क्षतिपूर्ति के नाम पर जर्मनी के ऊपर विशाल धनराशि के भुगतान का भार डाल दिया जिसने जर्मनी की अर्थव्यवस्था ध्वस्त कर दिया। लॉयड जॉर्ज ने स्वीकार किया था कि ये प्रावधान अत्यन्त कठोर थे। अमेरिका के विदेश मंन्त्री लेंसिग ने इन शर्तो को अत्यन्त कठोर और अपमानजनक कहा था।

(4) एकपक्षीय सन्धि :– वर्साय सन्धि की शर्ते एकपक्षीय थी। इस सन्धि मे समानता के सिन्द्वात की अलोचना की गई थी। इसमे पराजित राष्ट्रो पर निःशस्त्रीकरण , उपनिवेशो का त्याग आदि उन्मुक्त व्यापार आदि अनेकानेक ऐसी व्यवस्थाऐं लाद दी गई जो विजयी राष्ट्रो पर लागू नही की गई। जर्मन नेताओ पर युद्व अपराध के मुकदमें चलाये गये परन्तु युद्व के नियमो का उलंघन करने वाले मित्र राष्ट्रों के नेताओं पर नही। जर्मनी को राष्ट्रसंघ की सदस्यता से भी वचित कर दिया गया। विल्सन के चौदह सूत्र जहॉ उनके विपक्ष में थे वहॉ तो लागू करदिये गये परन्तु जहॉ पक्ष में थे वहॉ उनकी अवहेलना कर दि गयी। जनरल स्मट्स के अनुसार वर्साय की संन्धि राजनीतिज्ञों की शान्ति थी। जनता की नही।

(5) अनैतिक सन्धि :– जर्मनी में युद्व अपराध धारा के प्रति अत्यधिक रोष था इस धारा में जर्मनी को युद्व अपराध के लिए उत्तरदायी माना गया था। जर्मनी के अनुसार फ्रांस, रूस, और इग्लैड भी समान रूप से उत्तरदायी थे। जर्मनी का यह भी आरोप था की मित्र राष्ट्रों के उसके प्रति विश्वास घात किया था। उसने राष्ट्रपति विल्सन की चौदह सूत्री शान्ति योजना के आधार पर आत्मसमर्पण किया था लेकिनमित्र राष्ट्रो ने इस योजना का उल्घंन्न करके जर्मनी को धोखा दिया।

बोध प्रश्न :– 3

1– वर्साय की संधि के पक्ष में कौन–2 से तर्क दिये जा सकते है।

2– वर्साय संधि के दोषों को बताइए।

1.7 सांराश

पेरिस शान्ति सम्मेलन में जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, बल्गारिया और तुर्की के साथ हुई विभिन्न संन्धियों ने विश्व राजनीति की दिशा में आमूलचूल परिवर्तन किया। इन्ही संन्धियों के फल स्वरूप विश्व शान्ति की स्थापना के लिये राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई और इन्ही संन्धियों ने विश्व में द्वितीय विश्व युद्व का बीजारोपण भी किया। वर्साय की सन्धि के ठीक 20 वर्ष 2 माह और 4 दिन बाद द्वितीय विश्व युद्व प्रारम्भ हो गया था। इन 20 वर्षों में 1919 से 1939 तक वास्तव में वर्साय की सन्धि का लगभग सम्पूर्णतः खण्डन हो गया, इस की भूलों का भी इसकी सफलताओ का भी उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि राष्ट्र संघ की स्थापना थी जो 1939 तक एक प्रभावहीन संस्था रह गया था। क्षतिपूर्ति से सम्बन्धित अध्याय शनैः शनैः विफल हो गया नि शस्त्रीकरण सम्बधी अध्याय को हिटलर ने भंग कर दिया। मार्च 1938 में आस्ट्रिया का जर्मनी के साथ एकीकरण कर दिया गया। अन्त में हिटलर ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया तब द्वितीय विश्व युद्व छिड गया।

1.8 शब्दावली

निशस्त्रीकरण	–	शस्त्रों से विहीन होना
मेण्डेट	–	देखे इकाई 02 में 2.5.2
प्रतिशोध	–	बदला लेना
शिलिंग	–	मुद्रा
उपनिवेश	–	किसी देश पर किसी अन्य देश के राजनैतिक अथवा आर्थिक नियन्त्रण की व्यवस्था
उन्मुक्त व्यापार	–	खुला व्यापार

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न :–1

(1) 1– (×) 2– (√) 3– (×) 4– (×)

(2) 1– (×) 2– (×) 3– (√) 4– (×)

(3) देखे भाग 1.3.1

बोध प्रश्न :–2

(1) 1– (×) 2– (×) 3– (√) 4– (×)

(2) 1– (√) 2– (×) 3– (×) 4– (×)

(3) 1– (×) 2– (×) 3– (×) 4– (√)

(4) देखे भाग 1.5.1

बोध प्रश्न :–3

(1) देखे भाग 1.6.1

(2) देखे भाग 1.6.2

इकाई–2

राष्ट्र संघ का निर्माण

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 राष्ट्रसंघ की संविदा एवं उद्देश्य

2.3 राष्ट्रसंघ की सदस्यता

2.4 राष्ट्रसंघ का संगठन

- **2.4.1** साधारण सभा (असेम्बली)
- **2.4.2** परिषद् (काउन्सिल)
- **2.4.3** सचिवालय
- **2.4.4** अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
- **2.4.5** अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

2.5 राष्ट्रसंघ के कार्य एवं उपलब्धियॉ

- **2.51** प्रशासनिक कार्य
- **2.5.2** मैण्डेट सम्बन्धी कार्य
- **2.5.3** अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा सम्बन्धी कार्य
- **2.5.4** सामाजिक कार्य
- **2.5.5** आर्थिक कार्य
- **2.5.6** अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा सम्बन्धी कार्य

2.6 राष्ट्रसंघ की असफलतायें

2.7 राष्ट्रसंघ की असफलता के कारण

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

पेरिस शांति सम्मेलन के एक महत्वपूर्ण परिणाम के रूप में राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई थी। विभिन्न देशों के बीच शांति स्थापित करने और युद्वरहित विश्व की कल्पना को साकार करने के लिए राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई थी। इस ईकाई में हम जानेंगें–

- राष्ट्रसंघ की स्थापना के बिषय में।
- राष्ट्रसंघ की संविदा और सदस्यता के बिषय में।
- राष्ट्रसंघ के विभिन्न अंगों के बिषय में।
- राष्ट्रसंघ की सफलताओं एवं असफलताओं के बिषय में।

2.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्व की व्यापकता एवं इससे हुए विशाल जन धन की हानि ने यह स्पष्ट कर दिया था कि राष्ट्रीय विवादों का समाधान करने के लिए युद्व एक व्यर्थ साधन है। अतः यूरोप और अमेरिका में ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की मॉग होने लगी जो अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को हल करें और युद्व को रोक सके।

1915 ई0 में इस उददेश्य के लिए लन्दन में, ब्रिटिस राष्ट्रसंघ परिषद की स्थापना की गई। अमेरिका में लींग टु इन्फोर्स पीस नामक संस्था की स्थापना की गई। 1916 में अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने शांति और न्याय की सुरक्षा के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना का सुझाव दिया। 22 जनवरी1917ई. को उसने सीनेट के समक्ष शांति के लिए विश्व संघ का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। 8 जनवरी 1918 ई. को विल्सन ने अपनी चौदह सूत्रीय शांति योजना प्रस्तुत की जिसमें अंतिम सूत्र राष्ट्रसंघ की स्थापना के बारे में था। 1 सितबंर 1918 ई. को विल्सन ने घोषणा की कि राष्ट्रसंघ का विधान शांति समझौतों का अंग होना चाहिए।

पेरिस शांति सम्मेलन में संघ की स्थापना के बारे में विभिन्न योजनाऐं प्रस्तुत की गई। एक समिति द्वारा इन विभिन्न योजनाओं पर विचार लिया गया। यह समिति पेरिस शांति सम्मेलन में राष्ट्रसंघ का विधान बनाने के लिए नियुक्त की गई थी। समिति ने 14 फरवरी को राष्ट्रसंघ का अंतिम प्रारूप तैयार कर लिया। 28 अप्रैल 1919 ई. को शांति सम्मेलन के पूर्ण अधिवेशन में राष्ट्रसंघ के प्रारूप को स्वीकार किया गया। 10 जनवरी 1920 ई. से इसे लागू माना गया।

2.2 राष्ट्रसंघ की संविदा एवं उद्देश्य

राष्ट्रसंघ से संबंधित अभिलेख सीमित था। इसमें चार हजार शब्द तथा 26 धाराऐं थी। जिनमें संघ के उददेश्यों,सदस्यता की अवस्थाओं,संगठन का स्वरूप, दायित्वों आदि का वर्णन था। राष्ट्रसंघ का उद्देश्य उसकी भूमिका में प्रस्तुत किया गया था। राष्ट्रसंघ के उददेश्य थे–

(1) भबिष्य में युद्व की सम्भावनाओं की समाप्त करना।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति, व सुरक्षा की भावना उत्पन्न करना।

(3) विश्व के राष्ट्रों में भौतिक तथा बौद्विक सहयोग को प्रोत्साहित करना।

(4) पेरिस संधि को क्रियान्वित करना तथा संधि द्वारा स्थापित व्यवस्था को बनाये रखना। संविदा की कुल 26 धाराओं में से पहली से सातवीं धाराओं में संघ की सदस्यता तथा उसके विभिन्न संगठनों का वर्णन किया गया है। आठवीं और नवीं धारा विशस्त्रीकरण से संबंधित थी। दसवीं से सत्रहवीं धाराऐं सबसे महत्तवपूर्ण थी। इनमें सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था की गई थी। अठारह से इक्कीसवी धारा में मेन्डेंट प्रणाली की व्यवस्था थी। धारा तेईस में कल्याणकारी कार्यो जैसे श्रमिक कल्याण,बाल कल्याण आदि के प्रावधान थे। धारा चौबीस में विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा राष्ट्रसंघ के मध्य संबंधों का वर्णन किया गया था। धारा पच्चीस में रेड क्रॉस के प्रावधान थे तथा धारा 26वें में उस प्रक्रिया का वर्णन किया गया था। जिसके द्वारा संविदा में संशोधन हो सकता था।

2.3 राष्ट्रसंघ की सदस्यता

राष्ट्रसंघ के सदस्यों को दो वर्गो में विभाजित किया गया था– मौलिक तथा प्रबिष्ट। मौलिक सदस्य उन राष्ट्रों का कहा जाता था जिन्होनें युद्व में मित्र राष्ट्रों तथा उनके सहयोगी के रूप में युद्व किया था। इसके अन्तर्गत वे सभी स्वशासित राज्य, डोमेनियन तथा उपनिवेश थे जिन्होंने पेरिस शांति सम्मेलन में भाग लिया था और संधियों पर हस्ताक्षर किये थे। इस प्रकार के बत्तीस सदस्य थे। इन मौलिक सदस्यों में तेरह अन्य राष्ट्रों को भी सम्मिलित किया गया था जो युद्व काल में तटस्थ रहे थे। इस प्रकार मौलिक सदस्यों की संख्या कुल 45 थी।

सभा के दो तिहाई सदस्यों का समर्थन प्राप्त करके कोई भी राज्य राष्ट्रसंघ का सदस्य बन सकता था। ये राज्य प्रबिष्ट सदस्य कहलाते थे। कोई भी सदस्य परिषद के सर्वसम्मत मत द्वारा राष्ट्रसंघ से निकाला जा सकता था वह स्वयं भी दो वर्ष का नोटिस देकर अपनी सदस्यता छोड सकता था। 1935 तक प्रबिष्ट सदस्यों की संख्या 20 हो गयी थी। प्रारंभ से ही अमेरिका,जर्मनी और रूस इसके सदस्य नही थे। जर्मनी के साथ अन्य पराजित राष्ट्रों– तुर्की, आस्ट्रिया और बल्गारिया को भी संघ का सदस्य नही बनाया गया था। यह विल्सन की चौदह सूत्रीय योजना के विरूद्व था। पराजित राष्ट्रों की दृष्टि में यह विजयी राष्ट्रों की संस्था थी। जर्मनी 1926 में इसका सदस्य बना।लेकिन 1933 में उसने इसे त्यागने का नोटिस दे दिया। जापान और इटली जो मौलिक सदस्य थे ने भी क्रमशः 1933 एवं 1937 में सदस्यता त्यागने का नोटिस दे

दिया था। रूस 1933 में राष्ट्रसंघ का सदस्य बना लेकिन 1940 ई. में उसे राष्ट्रसंघ से बहिष्कृत कर दिया गया। इस प्रकार विश्व के सभी राष्ट्र कभी राष्ट्रसंघ के सदस्य नही रहे। द्वितीय विश्व युद्व के पश्चात राष्ट्रसंघ की अंतिम बैठक जो जेनेवा में 1946 में हुई। केवल उपराष्ट्र ही इसकी बैठक में सम्मिलित हुये थे।

बोध प्रश्न –

(1) राष्ट्रसंघ का प्रारूप लागू हुआ।

(अ) अप्रैल 1919 ई. (ब) सितम्बर 1919 ई.

(स) जनवरी 1920ई. (द) मार्च 1920 ई.

(2) राष्ट्रसंघ की संविदा में कुल कितनी धारायें है।

(अ) 22 (ब) 18

(स) 25 (द) 26

(3) राष्ट्रसंघ के उददेश्य क्या थे।

2.4 राष्ट्रसंघ का संगठन

राष्ट्रसंघ के तीन प्रधान अंग थे– साधारण सभा, परिषद एवं सचिवालय इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की गणना भी राष्ट्रसंघ की महत्वपूर्ण संस्थाओं में की जाती है।

2.4.1 साधारण सभा (असेम्बली)

यह राष्ट्रसंघ का प्रमुख अंग थी। सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित होते थे।प्रत्येक देश अधिकतम तीन प्रतिनिधि तक भेज सकता था, किन्तु प्रत्येक देश को केवल एक मत देने का ही अधिकार था। वर्ष में इसका एक अधिबेंशन होता था। अधिवेशन जेनेवा में होता था। सभा अपने सदस्यों मे से अपने अध्यक्ष का निर्वाचन करती थी। सभा आठ उपाध्यक्षों का भी निर्वाचन करती थी। इन सभी का कार्यकाल एक वर्ष का होता था।बैठक में अधिकांश निर्णय सर्वसम्मति से लिये जाते थे। असेम्बली के सदस्यों के दो तिहाई भाग द्वारा स्वीकृति दिये बिना किसी नये राष्ट्र को संघ का सदस्य नही बनाया जा सकता था। विश्व शांति से संबंधित बिषयों पर विचार विमर्श करना, बजट को स्वीकार करना, काउन्सिल के अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के जजों की नियुक्ति करना आदि असेम्बली के प्रमुख कार्य थे।

2.4.2 परिषद् (काउन्सिल)

यह साधारण सभा की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थी। साधारण सभा का गठन समानता के आधार पर किया गया था लेकिन परिषद की सदस्य संख्या सीमित थी। इसके गठन का आधार बडी शक्तियों की उच्चता का सिद्वांत था।

परिषद के सदस्य दो प्रकार के थे– स्थायी और अस्थायी। प्रारम्भ में पांच स्थायी सदस्य रखे गये थे। अमेरिका,ब्रिटेन,फ्रांस,इटली और जापान। लेकिन अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य नही बना था अतः उसका स्थान रिक्त रहा और स्थायी सदस्यों

की संख्या कुल चार रही। बाद में जापान और इटली द्वारा राष्ट्रसंघ छोड देने से स्थायी सदस्य की संख्या कुल दो (ब्रिटेन, फ्रांस) रह गयी।

प्रारंभ में अस्थायी सदस्यों की संख्या चार थी। लेकिन 1936 तक यह संख्या बढकर 11 हो गयी। अस्थायी सदस्यों का कार्यकाल तीन बर्ष का होता था। स्थायी सदस्यों को भी निषेधाधिकार नही था।परिषद के कार्य अत्यन्त विस्तृत थे। एक प्रकार से जहां साधारण सभा को राष्ट्रसंघ की व्यवस्थापिका सभा कहा जा सकता था।वहां परिषद को उसकी कार्यकारणी कहा जा सकता था इसके मुख्य कार्य–

(1) साधारण सभा के प्रस्तावों को क्रियान्वित करना।

(2) कुछ विशिष्ट प्रदेशों जैसे डेनजिंग,सार, आदि के प्रशासन की व्यवस्था करना।

(3) मैण्डेट तथा निशस्त्रीकरण संबंधी कार्य।

(4) महासचिव तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारियों की नियुक्ति।

(5) अल्पसंख्कों का हित।

(6) युद्व रोकना तथा राष्ट्रों के मध्य विवादों को हल करना।

(7) आक्रामक देश के विरूद्व सैनिक कार्यवाही करना।

परिषद को प्रथम बैठक 16 जनवरी 1920 को तथा अंतिम बैठक 14 दिसम्बर1939 को हुई थी।

2.4.3 सचिवालय

राष्ट्रसंघ का सर्वाधिक उपयोगी अंग सचिवालय था। इसका मुख्यालय जेनेवा में था। इसका प्रधान महासचिव था। उसकी सहायता के लिए 2 उपमहासचिव, 2 अवर सचिव तथा लगभग 750 अन्य कर्मचारी कार्य करते थे। ये कर्मचारी विश्व के लगभग 50 देशों से लिए जाते थे। सचिवालय में कुल ग्यारह विभाग थे। प्रमुख विभाग, आर्थिक, यातायात,निशस्त्रीकरण, स्वास्थ्य व अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से संबंधित थे। सचिवालय का मुख्य कार्य साधारण सभा व परिषद की बैठकों में विचाराधीन मामलों की सूची तैयार करना, बैठकों की कार्यवाही से संबंधित आवश्यक दस्तावेज तैयार करना तथा समझौते व सन्धियों के प्रकाशन की व्यवस्था करना था। राष्ट्रसंघ के प्रथम महासचिव ब्रिटेन के श्री जेम्स एरिक ड्रमण्ड थे।

2.4.4 अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

इस न्यायालय की स्थापना वर्ष 1920 में हेग में की गयी। प्रारंभ में 11 जजों की नियुक्ति की गयी परन्तु कालान्तर में यह संख्या बढाकर 15 कर दी गयी। जजों का कार्यकाल नौ वर्षो का होता था। उन्हें असेम्बली तथा काउन्सिल की संयुक्त सहमति से नियु क्त किया जाता था। अन्तर्राष्ट्रीय संधियों व समझौतों के अर्थ व उददेश्य की व्याख्या करना विभिन्न राज्यों के पारस्परिक विवादों पर कानूनी सलाह देना, राष्ट्रसंघ के संविधान की व्याख्या करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के विषय में असेम्बली व काउन्सिल को सलाह देना अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का मुख्य कार्य था।

2.4.5 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

इसका मुख्यालय भी जेनेवा में था। राष्ट्रसंघ के सदस्यों अपनी इच्छा से इस संगठन के सदस्य बन सकते थे। इस संगठन की स्थापना का उददेश्य श्रमिकों की स्थिति को सुधारना तथा पुरूषों,महिलाओं एवं बच्चों के लिए कार्य करने की उपयुक्त व मानवीय दशाओं को उपलब्ध कराना था। कार्य करने की दृष्टि से श्रम संगठन को तीन भागों में बांटा गया था– (अ) सामान्य सभा (ब)कार्यकारिणी (स) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय।श्रम संगठन की अनुशंसाऐं काम के घंटे, बाल श्रमिक, न्यूनतम मजदूरी,श्रमिकों के बीमा आदि से संबंधित थी।

बोध प्रश्न –2

(1) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का मुख्यालय स्थित था।

1. जेनेवा 2. हेग
3. लन्दन 4. वियना

(2) राष्ट्रसंघ के सचिवालय के प्रथम महासचिव किस देश के थे।

1. फ्रांस 2. आयरलैण्ड
3. ब्रिटेन 4. जापान

(3) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के प्रमुख कार्य कौन से थे।

(4) परिषद के प्रमुख कार्यो को संक्षेप में बतायें।

2.5 राष्ट्रसंघ के कार्य तथा उपलब्धियॉ

राष्ट्रसंघ का मुख्य कार्य युद्व को रोकना था लेकिन इस काम में वह केवल छोटे–2 राज्यों के विवादों को सुलझाने में ही समर्थ रहा। बडे राष्ट्रों के विवादों के प्रश्न पर राष्ट्रसंघ असफल हो गया। इसके लिए वे बडे राष्ट्र उत्तरदायी थे जिन्होनें राष्ट्रसंघ की उपेक्षा की और इस अर्न्राष्ट्रीय संस्था को दुर्बल कर दिया।

राष्ट्रसंघ के मुख्य कार्य निम्न है–

2.5.1 प्रशासनिक कार्य

(1) सारघाटी का प्रसार,सारघाटी लगभग 3200 वर्ग किमी. का कोयले की खानों से सम्पन्न एक व्यावसाधिक क्षेत्र था। जिसकी लगभग 8 लाख जनता का अधिकांश भाग जर्मन था। बर्साय की संधि में इस बात की व्यवस्था की गयी थी कि इस प्रदेश पर 15 वर्ष तक राष्ट्रसंघ द्वारा नियुक्त एक आयोग का शासन रहेगा और 15 वर्ष के पश्चात सार की जनता इस बात का निर्णय करेगी कि सारघाटी जर्मनी को वापस कर दी जाये अथवा फ्रांस को दे दी जाये या राष्ट्रसंघ का उस पर शासन रहे। 13जून 1935 की वर्षाय की संधि के अनुसार सार घाटी में हुये जनमत संग्रह में लगभग 90 प्रतिशत जनता ने सार प्रदेश को जर्मनी को सौंप देने के पक्ष में मत दिया। अतः राष्ट्रसंघ ने सार घाटी को जर्मनी को सौंप दिया।

(2) डेन्जिग का प्रशासनः– डेन्जिग को राष्ट्रसंघ के संरक्षण में स्वतंत्र नगर बनाया गया था। लेकिन राष्ट्रसंघ की ओर से इसका प्रशासन पौलेण्ड को सौपा गया था। पौलेण्ड को डेन्जिग में व्यापार संबंधी विशेष अधिकार प्राप्त थे। डेन्जिग की जर्मन आवादी पौलेण्ड के नियंत्रण एवं प्रशासन से रूष्ट थी। अंत में कटुतर इतनी बढ गयी कि 1 सितम्बर 1939 को जर्मनी ने पौलेण्ड पर आक्रमण कर दिया और शीघ्र ही डेन्जिग सहित पौलेण्ड के अधिकांश भाग पर जर्मनी का अधिकार हो गया।

2.5.2 मैण्डेट सम्बंधी कार्य

मैडेण्ट व्यवस्था जनरल स्मंटस की एक ऐसी खोज थी,जिसका उददेश्य विल्सन के आदर्शवाद तथा अन्य मित्र राष्ट्रों की साम्राज्यवादी आकांक्षाओं में समन्वय स्थापित करना था। राष्ट्रपति विल्सन चाहते थे कि आत्मनिर्णय के सिद्वांत के अनुसार भूतपूर्व जर्मन उपनिवेशों को स्वतंत्रता प्रदान की जाये, परन्तु अन्य मित्र राष्ट्र उपनिवेशों को क्षतिपूर्ति के रूप में अपने साम्राज्यों का एक अंग बना लेना चाहते थे। जनरल स्मटस की योजना के अनुसार इन प्रदेशों को न तो पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जानी थी और न ही उनको मित्र राष्ट्रों के साम्राज्यों में सम्मिलित किया जाना था, अपितु एक विशेष व्यवस्था के अधीन राष्ट्रसंघ के संरक्षण में उनके शासन को मित्र राष्ट्रों को सौप दिया जाना था। यही व्यवस्था मैण्डेट व्यवस्था के नाम से प्रख्यात हुई। मैण्डेट क्षेत्रों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया था। वस्तुतः इन श्रेणियों का आधार विकास की स्थिति थी।इनके निरीक्षण के लिए राष्ट्रसंघ ने एक आयोग भी स्थापित किया था।

2.5.3 अल्पसंख्यकों के हितो की सुरक्षा सम्बन्धी कार्य

यूरोप में युद्व समाप्त होने के बाद सबसे जटिल समस्या विभिन्न देशों के अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का प्रश्न था। अगर इन अल्पसंख्यकों को उन देशों की राष्ट्रीय सरकारों की इच्छा पर छोड दिया जाता तो वे उन्हें अपने में मिलाने का प्रयास करतीं। इससे विभिन्न देशों में संघर्ष आरम्भ हो जाते और शांति स्थापित करना असम्भव हो जाता। अतः इन अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए राष्ट्रसंघ ने राष्ट्रों के मध्य संधियों का मार्ग अपनाया। इन संधियों के क्रियान्वन का उत्तरदायित्व राष्ट्रसंघ को सौपा गया। इस प्रकार की संधियों केन्द्रीय तथा दक्षिणी पूर्वी यूरोप के राज्यों में की गयी। राष्ट्रसंघ ने 15 देशों से इस प्रकार की संधि की।जिनमें पौलेण्ड,चेंकोस्लोवाकिया,रूमानिया,यूगोंस्लाविया,और फ्रांस प्रमुख थे। इन संधियों से अल्पसंख्यकों को नागरिक अधिकार भाषा,धर्म, न्यायालय में समानता आदि अधिकारों की सुरक्षा प्राप्त हुई। कुछ देशों ने द्विपक्षीय संधियों भी कीं।लेकिन फिर भी राष्ट्रसंघ अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने में असफल रहा।कई देश अल्पसंख्यकों पर निर्दयता पूर्वक अत्याचार करते रहे। और राष्ट्रसंघ ने किसी भी राष्ट्र को उसकी आपत्तिजनक कार्यवाही के लिए नही रोका। 1929 में राष्ट्रसंघ ने अल्पसंख्यक समिति का गठन किया लेकिन यह प्रयास भी असफल हुआ। राष्ट्रसंघ की असफलता कारण यह था कि उसके पास ऐसे साधन नही थे जिससे वह संधियों का पालन करा सकता।

2.5.4 सामाजिक कार्य

राष्ट्रसंघ ने स्वास्थ्य,आवास,आहार, शिक्षा,नशाबन्दी आदि अनेकों सामाजिक क्षेत्रों में अत्याधिक मूल्यवान कार्य किया।

(1) राष्ट्रसंघ ने विश्व स्वास्थ्य संगठन की स्थापना की जिससे टाइफस, मलेरिया,चेचक,क्षय जैसे भंयकर रोगों की रोकथाम का विश्वव्यापी प्रयास किया जा सके। उसने दवाइयों का मानकीकरण तथा स्वास्थ्य परामर्श के क्षेत्र में भी कार्य किया। अनेक देशों में महामारियों को रोकने के लिए राष्ट्रसंघ ने डाक्टरों तथा दवाइयों को भेजा।

(2) राष्ट्रसंघ ने नशाखोरी रोकने,दास व्यापार,बधुआ मजदूरी,वैश्यावृत्ति व युद्वबन्दियों के लिए भी कार्य किये।

(3) राष्ट्रसंघ ने 1921 में विवाह को उम्र को बढाकर स्त्रियोंके अधिकारों की रक्षा की। अनैतिक उददेश्यों के लिए स्त्रियों के व्यापार पर रोक लगा दी गई। बालको व युवकों का अधिकार पत्र घोषित किया गया। तथा 1931 में नशीले पदार्थो के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की व्यवस्था की गयी।

(4) राष्ट्रसंघ ने बौद्विक सहयोग के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति की स्थापना की। जिसने साहित्य,कानून तथा विज्ञान के क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय कार्यो में समन्वय स्थापित किया।1926 में पेरिस में अन्तर्राष्ट्रीय बौद्विक सहयोग संस्थान की स्थापना हुई।

(5) युद्वबन्दियों की अदला बदली और शरणार्थियों की मानवीय समस्या के लिए भी राष्ट्रसंघ ने अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किये।

(6) परिवहन तथा संचार के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किये गये।रेलवे की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित की गई, पासपोर्ट के कार्य को सरल बनाया गया तथा व्यापारियों एवं पर्यटकों के लिए नियम बनाये गये आदि।

2.5.5 आर्थिक कार्य

महायुद्व के विध्वंसित विश्व का आर्थिक पुननिर्माण करने का दायित्व राष्ट्रसंघ ने स्वीकार किया और इसमें उसे सफलता भी मिली। 1920 में उसने ब्रुसेल्स सम्मेलन आयोजित किया जिसने आर्थिक सुधारे तथा व्यापार को प्रोत्साहन देने की योजना लागू की गयी। एक आर्थिक और राजस्व समिति स्थापित की गई जिसे आर्थिक पुनर्निर्माण का कार्य करना था। राष्ट्रसंघ ने संकाटग्रस्त देशों को आर्थिक सहायता प्रदान की, विषेशतया आस्ट्रिया और हंगरी को व्यापक आर्थिक सहायता दी गईं। बल्गारिया और यूनान को भी आर्थिक और वित्तीय सहायता दी गयी। राष्ट्रसंघ ने सार घाटी तथा डेन्जिग के आर्थिक विकास के लिए भी कार्य किया।

युद्धोपरान्त शरणार्थी समस्या अत्यन्त विकट हो गयी थी। लाखो रूसी, यूनानी, और आर्मीनियन बेघर हो गये थे। राष्ट्रसंघ ने प्रभावित देशों को वित्तीय सहायता दी और स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया।

2.5.6 अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संबंधी कार्य

राष्ट्रसंघ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाये रखना और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण उपायों से समाधान करना था। इसके लिए राष्ट्रसंघ संविदा में 6 प्रकार कीा व्यवस्थाऐं है–

(1) निःशस्त्रीकरण

(2) युद्व निवारण

(3) पंच निर्णय तथा न्यायिक समझौते

(4) साधारण सभा अथवा परिषद द्वारा विवादों का समाधान

(5) सन्धियों का पुननिरीक्षण

(6) सामूहिक सुरक्षा

अपने 20 वर्षो के काल में लगभग 40 राजनीतिक विवादों का राष्ट्रसंघ को सामना करना पडा। इनमें से छोटे राज्यों से संबंधित विवादों को हल करने में

राष्ट्रसंघ को सफलता मिली। बडे राष्ट्रों ने अपने स्वार्थो के कारण संघ के आदेशों की अवहेलना की। जिन विवादों को हल करने में राष्ट्रसंघ सफल हुआ उनमें से कुछ प्रमुख निम्न है–

(1) उत्तरी साइलेशिया का विवादः पौलेण्ड और जर्मनी में साइलेशिया के प्रश्न पर विवाद था। राष्ट्रसंघ ने इस विवाद को कुशलतापूर्वक हल किया।

(2) अल्वानिया का विवादः राष्ट्रसंघ ने 1920 में अल्वानिया को स्वतंत्र राष्ट्र मान लिया था लेकिन यूगोस्लाविया और ग्रीस उसका बॅटवारा चाहते थे। यूगोस्लाविया उस पर आक्रमण कर दिया राष्ट्रसंघ ने इसमें हस्तक्षेप किया और सीमा विवाद को हलकर दिया।

(3) यार्वोजनो विवाद : पौलेण्ड और चेकोस्लोवाकिया के मध्य यह सीमा विवाद था। राष्ट्रसंघ ने इसकों लिए एक आयोग नियुक्त किया। आयोग द्वारा निर्धारित सीमा को दोनों देशों ने स्वीकार किया।

(4) लेटेशिया विवाद : लेटेसिया नगर के बारे में कोलम्बिया और पेरू के मध्य विवाद था। राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप से पेरू ने लेटेसिया नगर कोलम्बिया को लौटा दिया।

(5) मेमल समस्याः लिथुआनिया मेमल पर अधिकार करना चाहता था लेकिन राष्ट्रसंघ इसे स्वतंत्र नगर बनाना चाहता था। बाद में राष्ट्रसंघ के आयोग ने लिथुआनिया के दावे को उचित पाया अतः राष्ट्रसंघ ने मेमल पर उसका अधिकार स्वीकार कर लिया।

(6) यूनान एवं बल्गोरिया का विवादः सन् 1925 में सीमा बन्दी के प्रश्न पर यूनान ने बल्गेरिया पर आक्रमण कर दिया। राष्ट्रसंघ ने यूनान को तुरंत सेना हटाने का आदेश दिया। इसके अलावा उसने यूनान के आर्थिक व व्यापारिक बहिष्कार की चेतावनी भी दी। फलस्वरूप यूनान ने बल्गेरिया से सेनाओं को हटा लिया।

(7) आलैण्ड विवादः बाल्टिक सागर में स्थित इन द्वीपों के बारे में फिनलैण्ड और स्वीडन के मध्य विवाद था। राष्ट्रसंध ने इन द्वीपों पर फिनलैण्ड का अधिकार स्वीकार कर लिया लेकिन आदेश दिया कि वह द्वीपों की किलेबन्दी न करें।

बोध प्रश्न :–

(1) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए राष्ट्रसंघ संविदा में कुल कितने प्रकार की व्यवस्थाऐं थी।

(अ) 4 (ब) 5

(स) 6 (द) 8

(2) मैण्डेट व्यवस्था क्या थी।

(3) राष्ट्रसंघ के सामाजिक कार्यो को संक्षेप में समझाये।

2.6 राष्ट्रसंघ की असफलतायें

राष्ट्रसंघ के प्रावधान पर्याप्त रूप से शक्तिशाली थे और अगर सदस्य राष्ट्र इनको क्रियान्वित करते तो राष्ट्रसंघ सभी विवादों को हल कर सकता था। लेकिन जब

बडे देशों के स्वार्थो का मामला आया तो राष्ट्रसंघ की पर्याप्त समर्थ नही मिला। इस लिए इन बडी शक्तियों पर अंकुश लगाने में राष्ट्रसंघ सफल नही हो सका। राष्ट्रसंघ की मुख्य असफलतायें निम्न थी–

(1) मंचूरिया पर जापान का आक्रमण – मंचूरिया एक धनी देश था उसमें कोयला लोहा चॉदी सोना तॉवा आदि कच्चे माल की खाने प्रचुर मात्रा में थी। जापान मंचूरिया को अपने लिए एक विशाल बाजार एवं उपयुक्त उपनिवेश के तौर पर देखता था। इसके लिए 1931 में उसने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया और 1932 में सम्पूर्ण मंचूरिया पर जापान का अधिकार हो गया। जापान ने तर्क दिया कि उसने आत्मरक्षा के लिए कार्यवाही की थी। चीन की अपील पर राष्ट्रसंघ ने ब्रिटिश प्रतिनिधि लॉर्डलिटन की अध्यक्षता में एक कमीशन मंचूरिया भेजा। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में जापान को युद्व प्रारंभ करने के लिए दोषी नही ठहराया।जिससे राष्ट्रसंघ जापान की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए कोई ठोस कदम नही उठा सका। संघ की असफलता के कारण चीन को जापान के साथ संधि करनी पडी। सन 1933 में जापान ने राष्ट्रसंघ की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। राष्ट्रसंघ के अस्तित्व पर यह तीव्र आघात था।

(2) कोरक्यू द्वीप की समस्याः यह विवाद यूनान तथा इटली के मध्य उत्पन्न हुआ था। सन 1923 में इटली के एक प्रतिनिधि की हत्या कर दी गयी थी। इटली ने इसका आरोप यूनान पर लगाते हुये उससे क्षतिपूर्ति की मांग की। जिसे यूनान ने ठुकरा दिया व राष्ट्रसंघ के सम्मुख संपूर्ण मामले को प्रस्तुत कर दिया। इसी बीच इटली ने कोरक्यू द्वीप पर बमवारी कर उसे पूरी तरह नष्ट कर दिया। इतना ही नही,इटली ने राष्ट्रसंघ को इस मामले मे रूचि न लेने की धमकी भी दे दी। जिससे भयभीत होकर राष्ट्रसंघ ने इस मामले में कोई रूचि नही ली। फलस्वरूप इटली यूनान से क्षतिपूर्ति लेने में सफल हो गया। इस घटना से राष्ट्रसंघ की कमजोरी एंवं अकर्मण्यता को सिद्व कर दिया।

(3) इथोपिया पर इटली का आक्रमणः 1895 की अडोवा की पराजय का बदला लेने के लिए 1934 से ही इटली के सैनिकों की इथोपिया के विरूद्व कार्यवाहियॉ प्रारंभ हो गयी थी। और दो वर्षो पश्चात 1936 में इटली ने इथोपिया पर अधिकार कर लिया। इथोपिया ने राष्ट्रसंघ से शिकायत की राष्ट्रसंघ ने इटली पर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिये। लेकिन बडे देशों के कारण ये प्रतिबंध प्रभावहीन रहे। राष्ट्रसंघ असहाय था। अंत में राष्ट्रसंघ ने इटली के विरूद्व प्रतिबंधों को उठा लिया। राष्ट्रसंघ ने इथोपिया को संघ से निकाल दिया और इटली को विजय को स्वीकार कर लिया।

(4) स्पेन का गृह युद्व : स्पेन के गृहयुद्व में भी राष्ट्रसंघ अकर्मण्य रहा। इटली और जर्मनी ने जनरल फ्रेको को सैनिक और आर्थिक सहायता दी जिससे स्पेन की निर्वाचित

गणतंत्रीय सरकार नष्ट हो गयी। सोवियत रूस ने राष्ट्रसंघ से आग्रह किया कि स्पेन की गणतंत्रीय सरकार की सहायता दी जाये लेकिन इंलैण्ड और फ्रांस की उर्पेक्षा के कारण राष्ट्रसंघ कोई कार्यवाही नही कर सका।

(5) हिटलर एवं राष्ट्रसंघः जर्मनी में हिटलर ने वर्साय संधि की धाराओं को एक एक करके तोड दिया और राष्ट्रसंघ निष्क्रिय बना रहा। 1935 में निशस्त्रीकरण, 1936 में राइन क्षेत्र संबंधी धाराओं को उसने तोडा। 1936 मेंस्पेन के गृहयुद्व में

हस्तक्षेप किया और 1938 में आस्ट्रिया को जर्मनी में मिला लिया। राष्ट्रसंघ के इस निषक्रियता के लिए इग्लैण्ड की तुष्टीकरण की नीति उत्तरदायी थी। जब हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया को जर्मनी में मिला लिया तो किसी भी देश ने इसे राष्ट्रसंघ में नही उठाया। सामूहिक सुरक्षा नष्ट हो चुकी थी और उसके साथ राष्ट्रसंघ भी समाप्त हो चुका था।

2.7 राष्ट्रसंघ की असफलता के कारण

राष्ट्रसंघ का प्रमुख उत्तरदायित्व विश्व शांति की रक्षा करना था। लेकिन राष्ट्रसंघ इसी उत्तरदायित्व को पूरा करने में असफल रहा उसकी स्थापना के बीस वर्षो में ही वह असफल हो गया। असकी असफलता अनेक कारणों का सामूहिक परिणाम थी। जो निम्न है –

(1) अमेरिका का सदस्य न होनाः अमेरिका का राष्ट्रपति विल्सन राष्ट्र संघ का संस्थापक था। किन्तु आश्चर्यजनक रूप से अमेरिका राष्ट्र संघ का सदस्य नही बना। इससे राष्ट्र संघ की प्रतिष्ठा को भीषण आघात लगा और उसकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और शक्ति में कमी आई। अमेरिका की उपस्थिति से राष्ट्रसंघ को नैतिक शक्ति प्राप्त होती और इग्लैण्ड और फ्रांस के स्वार्थो के विरूद्व वह सन्तुलन स्थापित का सकता था। अतः अमेरिका की अनुपस्थिति राष्ट्रसंघ की असफलता का मुख्य कारण थी।

(2) सार्वभौमिक शक्ति का अभावः राष्ट्रसंघ कभी भी विश्वव्यापी संस्था नही बन सका। इसे विश्व की महान शक्तियों का सम्मिलित सहयोग कभी प्राप्त नही हुआ। जर्मनी की दृष्टि में यह विजयी राष्ट्रों का संगठन मात्र था। रूस को उसकी साम्यवादी सरकार के कारण अछूत समझा गया और उसे राष्ट्रसंघ से पृथक रखा गया। अमेरिका प्रारंभ से ही इसका सदस्य नहीं बना। बाद में जर्मनी और रूस को इसका सदस्य बनाया गया लेकिन जापान,जर्मनी,इटली और रूस ने क्रमशः 1932 से 1939 के मध्य इसकी सदस्यता त्याग दी। राष्ट्रसंघ का सार्वभौम न होना, उसकी असफलता का प्रमुख कारण था। इसी कारण आलोचकों ने उसे 'विजयी राष्ट्रों का संघ' और 'सन्तुष्ट राज्यों का संघ' आदि नामों से पुकारा है।

(3) पेरिस की संधि से संबंध : राष्ट्रसंघ को पेरिस शांति सम्मेलन का अभिन्न अंग बना दिया गया था। इससे पराजित राष्ट्र इसे विजयी राष्ट्रों का संघ मानते थे।पराजित राष्ट्रों में संधियों का विरोध था। यह राष्ट्रसंघ का विरोध बन गया। पराजित राष्ट्रों की दृष्टि में राष्ट्रसंघ संधियों का संरक्षण और विजेता राष्ट्रों द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्वि का यंत्र था। इसी कारण राष्ट्रसंघ असफल हुआ।

(4) राष्ट्रीयता की भावना का उदयः राष्ट्रसंघ अन्तर्राष्ट्रीय की भावना पर आधारित था लेकिन कोई भी देश राष्ट्रीयता की भावना को त्यागकर विश्व बन्धुत्व व समानता के लिए कार्य करने को तत्पर नही था। यही दृष्टिकोण राष्ट्रसंघ की विफलता का कारण बना।

(5) राष्ट्रसंघ की संगठनात्मक संरचना में दोषः राष्ट्रसंघ की संविदा में कुछ दोष थे जैसे –

(अ) कुछ परिस्थितियों में राष्ट्रों युद्व करने की अनुमति दी गई थी।

(ब) राष्ट्रसंघ के पास अपनी सेना नही थी वह सदस्य राष्ट्रों से सेना उपलब्ध कराने की केवल प्रार्थना कर सकता था।

(स) सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर परिषद में एक मत से निर्णय होना आवश्यक था। स्वार्थो की राजनीति में यह सर्वथा असम्भव था।

(6) दोहरा मानदण्ड : राष्ट्रसंघ ने छोटे राष्ट्रों की अपना निर्णय मानने के लिए बाध्य किया लेकिन बडे राष्ट्रों के मामले में वह कई बार हस्तक्षेप नही कर पाया उसका यही दोहरा मानदण्ड उसकी असफलता का कारण बना।

(7) आर्थिक मंदी का प्रभावः 1929 की विश्वव्यापी आर्थिकमंदी ने राष्ट्रों के समक्ष गंभीर संकट खडा कर दिया था। विश्व के सभी देश संरक्षण की नीति के द्वारा अपने हितों की रक्षा करने लगे और आत्मनिर्भरता का प्रयास करने लगे। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग कम हो गया।

(8) तानाशाही का उदयः उग्र राष्ट्रवाद के फलस्वरूप 1930 के पश्चात जर्मनी,इटली, और स्पेन में क्रमशः हिटलर,मुसोलिनी एवं जनरल फ्रेंको नामक तानाशाहों का उदय हुआ। जापान में भी सैनिकवाद की भावना विकसित हुई। ये तानाशाह राष्ट्रसंघ में बिल्कुल विश्वास नही करते थे। उनकी महत्वाकांक्षी नीतियॉ राष्ट्रसंघ के पतन का मुख्य कारण सिद्व हुई।

बोध प्रश्न :– 4

(1) मंचूरिया पर जापान के आक्रमण को संक्षेप में समझाये।

(2) हिटलर का राष्ट्र संघ पर क्या प्रभाव पडा।

(3) राष्ट्र संघ की असफलता के प्रमुख कारण कौन से थे।

2.8 सारांश

राष्ट्रसंघ के बारे में अध्ययन करने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि यद्यपि राष्ट्रसंघ अन्तर्राष्ट्रीय शांति की स्थापना और सुरक्षा करने में सफल न हो सका लेकिन उसकी उपलब्धियॉ अत्यंत महत्वपूर्ण थी। इतिहासकार पाटर के शब्दो में ''एक विशिष्ट अर्थ और विशेष परिस्थिति में इतिहास की सबसे बडी विफलता एवं निराशा का घोतक होते हुए भी इस विषय में कोई संदेह नही है कि राष्ट्रसंघ अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के विकास में, इतिहास को किसी अन्य संस्था से अधिक योगदान दिया''।

राष्ट्रसंघ अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में पहला व्यापक प्रयास था। उसने सामाजिक,आर्थिक तथा बौद्विक कार्यो में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। राष्ट्रसंघ की सबसे बडी देन यह थी। कि उसने अन्तर्राष्ट्रीय भावना तथा सहयोग का विकास किया। राष्ट्रसंघ के अनुभवों का ही संयुक्त राष्ट्रसंघ ने लाभ उठाया।

2.9 शब्दावली

बहिष्कृत	–	निकाल देना
क्रियान्वयन	–	लागू करना
अकर्मण्य	–	क्रियाशील न होना
सार्वभौम	–	विश्व व्यापी

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न :–1

(1) (अ) × (ब) × (स) √ (द)×

(2) (अ) × (ब) × (स) × (द)√

(3) देखें भाग 2.2

बोध प्रश्न :– 2

(1) (अ) × (ब) √ (स) × (द)×

(2) (अ) × (ब) × (स) √ (द)×

(3) देखें भाग 2.4.4

(4) देखें भाग 2.4.2

बोध प्रश्न :– 3

(1) (अ) × (ब) × (स) √ (द)×

(2) देखें भाग 2.5.2

(3) देखें भाग 2.5.4

बोध प्रश्न :– 4

(1) देखें भाग 2.6 (1)

(2) देखें भाग 2.6 (5)

(3) देखें भाग 2.7

इकाई–3

रूस की क्रांति तथा नवीन आर्थिक नीति

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 क्रांति के कारण

3.3 क्रांति का विस्फोट

3.4 अस्थायी सरकार

3.5 बोल्शेविक क्रांति नवम्बर 1917 ई0

- **3.5.1** बोल्शेविक क्रांति के कारण
- **3.5.2** बोल्शेविक क्रांति की सफलता के कारण

3.6 रूसी क्रांति का महत्व

3.7 लेनिन – एक परिचय

3.8 लेनिन सरकार की मुख्य उपलब्धियॉ

- **3.8.1** सोवियत संविधान
- **3.8.2** जर्मनी से शांति सम्बन्ध
- **3.8.3** गृह युद्व
- **3.8.4** विदेशी हस्तक्षेप

3.9 नवीन आर्थिक नीति

3.10 सारांश

3.11 शब्दावली

3.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में 1917 में हुई रूसी क्रांति के विषय में अध्ययन किया जायेगा। इस इकाई में हम जानेगें–

- इस क्रांति कारणों के बारे में विस्तार से जान पायेंगें।
- क्रांति के घटनाक्रम को समझ पायेंगें।

- महान क्रांतिकारी लेनिन के विषय में जानकारी प्राप्त करेगें।
- लेनिन की रूस में लागू की गई नवीन आर्थिक नीति का अध्ययन करेगें।

3.1 प्रस्तावना

1917 ई0 में रूस में दो क्रांतियॉ हुई थी। कुछ इतिहासकारों का मत है कि दो क्रांतियॉ नही अपितु एक ही क्रांति दो चरणों में पूर्ण हुई थी। पहली क्रांति मार्च 1917 में हुई जो कि राजनीतिक थी। इसके द्वारा रूस के स्वेच्छाचारी जार प्रशासन का अंत हुआ और मध्यम वर्गीय गणतंत्रीय सरकार की स्थापना हुई। दूसरी क्रांति नवम्बर 1917 में हुई जिसे बोल्शेविक क्रांति कहा जाता है। यह एक सामाजिक क्रांति थी। जिसके द्वारा विश्व में सर्वहर वर्ग के गणतंत्र की स्थापना हुई।

3.2 क्रांति के कारण

दुनिया की कोई भी क्रांति अचानक नही होती बल्कि कारण धीरे धीरे इकट्ठा होते रहते है और बाद में उनमें विस्फोट हो जाता है। सन 1917 की क्रांति में भी निम्नलिखित कारणों का विशेष योगदान रहा–

(1) जारशाही की निरकुशंता – रूस का जार निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी था। वह समस्त शक्तियों का केन्द्र था। वह दैवी अधिकार के आधार पर शासन करता था।उसकी इच्छा ही कानून थी। उसकी दृष्टि में ड्यूमा(संसद) का कोई महत्व नही था। ड्यूमा को कोई विशेष अधिकार प्राप्त नही थे। अन्तिम जार निकोलस द्वितीय (1894–1917) ने सम्पूर्ण रूस के आटोक्रेट की उपाधि धारण की थी। इस प्रकार रूस में एकतन्त्रात्मक व्यवस्था थी परन्तु उसमें अनेकानेक दोष थे। जिसके कारण जनसाधारण में अत्यधिक असंतोष उत्पन्न हो गया था और उन्होंनें देश के निरंकुश ढांचे में परिवर्तन करने का निश्चय कर लिया।

(2) औद्योगिक क्रांति – 1890 के बाद से ही रूस में औद्योगिक क्रांति हो रही थी। इसके एक विशाल श्रमिक वर्ग अस्तित्व में आ गया था। लेकिन रूस में इस औद्योगिक क्रांति के साथ आर्थिक,राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन नही हो रहे थे। वहां के श्रमिकों की दशा अत्यंत शोचनीय थी।

वे मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा के सम्पर्क में थे। जिसके अनुसार कारखानों पर श्रमिकों का पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। इन्हीं परिस्थितियों में 1917 की क्रांति हुई।

(3) कृषकों की दयनीय स्थिति – रूस की क्रांति का एक प्रमुख कारण उसकी अर्थव्यवस्था का अत्याधिक पिछडापन था। रूस की जनसंख्या का 4/5 भाग कृषि पर निर्भर था। लेकिन फिर भी कृषकों की स्थिति दयनीय थी। कृषि योग्य भूमि का क्षेत्र कम था। और उत्पादन भी यूरोपीय देशों की तुलना में अल्प था। भूमि पर नियंत्रण भी मनमाने व दोषपूर्ण ढंग का था। एक तिहाई कृषकों के पास भूमि नही थी। ये किसान भू–स्वामियों के खेतों पर काम करते थे। इसी शोचनीय दशा ने भूमिपतियों और गरीब किसानों के बीच संघर्ष को जन्म दिया।

(4) बौद्विक क्रांति – बुद्विजीवी वर्ग ने भी रूसी क्रान्ति की पृष्ठमूभि बनाने में अपना योग दान दिया शिक्षित वर्ग अन्याय के विरूद्व आवाज निरंतर उठा रहा था।टॉलस्टाय, दोस्तोवस्की के उपन्यासों एवं मार्क्स, मैक्सिम गोर्की के विचारों ने समाज में क्रांति की भावना को उत्पन्न किया। इसके अलावा पश्चिमी यूरोप के राजनीतिक विचारों ने भी रूस के शिक्षित मध्यम वर्ग के लोगों पर बहुत प्रभाव डाला। पश्चिमी साहित्य का रूसी भाषा में अनुवाद किया गया और जब रूस के शिक्षित युवा वर्ग ने उस साहित्य का अध्ययन किया तब वे यह समझ सके कि उनके देश के हालातों का कारण जार शासकों की निरंकुश शासन पद्वति थी।

(5) राजनीतिक असंतोष : रूस की जनता को कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त नही थे। इस लिए विद्रोह के अतिरिक्त कोई विकल्प नही था। गुप्तचर पुलिस के जघन्य अत्याचारों से आंतक स्थापित हो गया था।इसका असर विद्रोहियों ने भी रक्तपात और हत्याओं से दिया। जनता को मताधिकार प्राप्त नही था। ड्यूमा (संसद) अधिकारहीन संस्था थी। अतः प्रजातान्त्रिक संस्थाऐं न होने के कारण असंतोष ने क्रांति का रूप धारण कर लिया।

(6) नौकरशाही की अयोग्यताः रूसी नौकरशाही में उच्च पदों पर घनी परिवार के लोगों का अधिकार था। उन्हें जन साधारण से कोई लगाव नही था। वे निर्धनों का शोषण करते थे।वे केवल जार के लिए कार्य करते थे। उनकी अयोग्यता के कारण रूसी जनता में अत्याधिक असंतोष व निराशा व्याप्त हो गयी थीं और जनता ने यह निश्चय किया कि वे वर्तमान व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करें।

(7) युद्व का प्रभाव – युद्व के कारण रूस का कृषि उत्पादन घट गया था। कोयले की कमी के कारण कारखानें बंद हो गये थे। श्रमिकों की हडताल से भी औद्योगिक उत्पादन कम हो गया था। इससे उपभोक्ता वस्तुओं की कमी हो गयी थी। युद्व में रूसी सेनाओं की पराजय ने इस आर्थिक संकट और जन असंतोष को चरम सीमा तक पहुंचा दिया था। उनका सारा कष्ट और बलिदान व्यर्थ हो गया था। युद्व में लाखों सैनिक मारे गये थे और लाखों घायल हो गये थे। जनता की दृष्टि में इसका कारण जार की सरकार का कुशासन था। मोर्चे पर सैनिक भी असंतुष्ट थे। यही परिस्थितियॉ क्रांति का कारण बनी।

(8) रूसर सेना की अयोग्यता – रूसी नौकरशाही की भांति रूसी सेना में भी योग्यता का अभाव था। वह पहले ही क्रीमिया के युद्व व रूस जापान युद्व में बुरी तरह पराजित हो चुकी थी। इससे देश के सम्मान को बहुत धक्का लगा था। रूसी सेना को प्रथम विश्व युद्व में भी बहुत हानि उठानी पडी क्योंकि जार ने अपने सैनिकों को अनिवार्यं सुविधाऐं प्रदान करने की कोई चिन्ता नही की थी। युद्व के लिए एकत्रित धनराशि का सरकार एवं भ्रष्ट नौकरशाही निरंतर दुरूपयोग कर रही थी। कोई भी व्यक्ति राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व और कर्तव्य के प्रति चिन्तित नही था। जब दो बर्षो के बाद भी रूस को अपनी विजय के कोई आसार दिखायी नही दिये, तब रूसी नौकरशाही व सेना दोनों में निराशा व्याप्त होने लगी और उनका नैतिक साहस गिर गया। इससे रूस की जनता में अत्यधिक असंतोष व निराशा फैल गयी जिसने क्रांति के विस्फोट को अनिवार्य बना दिया।

(9) रूसीकरण की नीति का दुष्परिणाम – रूस में अनेक छोटी–2 जातियॉ निवास करती थी। जार निकोलस द्वितीय अपनी निरंकुशता के कारण उन सबका रूसीकरण करना चाहता था। अतः वे जार को विरोधी हो गयी थी। और

क्रांति के समय अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इन्होंने भी क्रांति में सक्रिय सहयोग दिया।

बोध प्रश्न – 1

(1) नवम्बर 1917 की बोल्शेविक क्रांति थी।

(अ) सामाजिक क्रांति **(ब)** आर्थिक क्रांति **(स)** राजनीतिक क्रांति

(2) कृषकों की स्थिति रूसी क्रांति के लिए कैसे जिम्मेदार थी।

(3) रूसी क्रांति में बुद्विजीवी वर्ग का क्या योगदान था।

3.3 क्रांति का विस्फोट

सन् 1917 की क्रांति दो चरणों में पूरी हुई क्रांति का आरंभ प्रथम महायुद्व के दौरान खाद्यान्य के अभाव के कारण हुआ। उस समय रूस में नित्य प्रयोग की वस्तुओं जैसे अनाज,कपडा,लकडी, आदि का अभाव था। इन चीजों के मूल्य भी बहुत तेजी से बढ गये थे।निर्धन व्यक्तियों के पास दो वक्त की रोटी भी वस्तु का अभाव नही है।अपितु लालची लोगों ने गुप्त रूप से उनका भण्डारण कर लिया है। सम्राट जार निकोलस द्वितीय ने इस समय उदासीन था। उसने जनता की मदद के लिए कुछ नही किया जिससे क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

8 मार्च 1917 को पैट्रोग्राड में लगभग एक लाख कर्मचारियों ने हडताल घोषित कर दी। उन्होनें निरंकुश जार व भ्रष्ट नौकरशाही के विरूद्व नारेबाजी की। भूखे मजदूरों ने कानून व्यवस्था को अपने हाथ में लेकर लूटमार प्रारंभ कर दी। उन्होनें दुकानों से रोटियॉ लूटनी शुरू कर दी। जार ने क्रोधित होकर अपने सैनिको को भीड पर गोली चलाने का आदेश दिया किन्तु उन्होनें जार के आदेश का पालन करने से मना कर दिया। 10मार्च को एक प्रभावपूर्ण संपूर्ण हडताल को देशभर में घोषणा की गयी और 11 मार्च को जार ने क्रोधित होकर ड्यूमा को भंग कर दिया, जिससे ड्यूमा ने भी विद्रोह कर दिया। उन्होनें सम्राट के आदेशों का पालन करने से इंकार कर दिया। और अन्ततः 14मार्च को क्रांतिकारी एक अस्थायी सरकार की स्थापना करने में सफल हुये। उन्होनें जार से सिंहासन त्यागने की मांग भी की। स्थिति को नियंत्रण से बाहर देखकर 15 मार्च को जार निकोलस द्वितीय नं सिंहासन त्याग दिया। इस प्रकार रूस में पिछले तीन सौ वर्षो से शासन करने वाले रोमनोफ राजवंश का अंत हुआ और एक अंतरिम सरकार की स्थापना की गयी।

3.4 अस्थायी सरकार

अन्तरिम सरकार में मार्च1917 में जार्ज ल्वाव को अस्थायी सरकार का अध्यक्ष नियुक्त किया गया, परन्तु वह रूस की कठिनाइयों का समाधान ढूॅढने में असफल रहा। ल्वाव की उदार सरकार समस्याओं को हल करने में सफल नही हुई। इसलिए शक्ति उनके हाथ से निकलकर समाजवादी दल के हाथ में जा पहुंची।समाजवादी क्रांतिकारी नेता केरेन्सकी जो पहले रूस का युद्व मंत्री था।मेन्शेविक दल के हाथ में शक्ति आने पर 22जुलाई 1917 को प्रधानमंत्री बना। केरेन्सकी युद्व को जारी रखना चाहता था किन्तु साथ ही वह उसे शीघ्रता शीघ्र सम्माननीय तरीके से बंद भी करना चाहता था। उसकी सरकार भी जनता की

महत्वपूर्ण मांगों को पूरा करने में समर्थ नही हुई। मजदूरों और किसानों के विद्रोह जोर पकड रहे थे। दूसरी ओर बोल्शविक नेता लेनिन रूस आ गया था जिसने किसानों और मजदूरों की मांगों को पूरा करने का स्पष्ट आश्वासन दिया। उन्हें अपने पक्ष में देखकर लेनिन ने अस्थायी सरकार से सत्ता छीनने का दृढ संकल्प कर लिया।

3.5 बोल्शेविक क्रांति नवम्बर 1917 ई0

7 नवम्बर 1917 की रात को पेट्रोग्राड के सरकारी भवनों पर बोल्शेविक सैनिकों ने अधिकार कर लिया। सभी मंत्रियों को बंदी बना लिया लेकिन केरेन्सकी भाग गया।

7 नवम्बर की रात को ही सोवियतों का सम्मेलन हुआ जिसमें लेनिन की अध्यक्षता में नवीन सरकार का गठन किया गया। इस प्रकार बिना रक्तपात के एक महान क्रांति हो गयी।और लेनिन के नेतृत्व में एक ऐसी सरकार की स्थापना की गई जिसे मजदूरों का वास्तविक सहयोग और समर्थन प्राप्त था।

3.5.1 बोल्शविक क्रांति के कारण

(1) अस्थायी सरकार का देश और सेना पर प्रभावशाली अधिकार नही था।

(2) सरकार जन आकांक्षाओं के विरूद्व युद्व जारी रखना चाहती थी जो सैनिको को स्वीकार नही था।

(3) अस्थायी सरकार को श्रमिकों तथा कृषकों के विरोध का सामना करना पडा क्योंकि इन वर्गो को क्रांति से कुछ नही मिला था।

(4) अस्थायी सरकार में प्रभावशाली नेतृत्व का आभाव था।

(5) वास्तविक सत्ता सोवियतों के पास थी।

(6) बोल्शेविकों ने जन आकांक्षाओं के अनुसार प्रचार करके सैनिको, कृषकों तथा श्रमिकों में लोकप्रियता हासिल कर ली थी।

(7) लेनिन के दृढ नेतृत्व ने आम लोगों के मन में उम्मीद जगाई थी।

3.5.2 बोल्शेविक क्रांति को सफलता के कारण

(1) बोल्शेविकों ने सोवियतों में अपना बहुमत बना लिया था। सोवियतों पर नियन्त्रण हो जाने से उनका राज्य की वास्तविक सत्ता तथा सेनाओं पर नियंत्रण स्थापित हो गया था।

(2) बोल्शेविकों की सफलता का मुख्य कारण लेनिन का दृढ नेतृत्व था। उसे जन भावनाओं को समझने की दूरदर्शिता प्राप्त थी। उसने कृषकों की भूमि श्रमिकों को कारखानें और सैनिकों को शांति का नारा देकर इन सभी का समर्थन प्राप्त कर लिया था।

(3) बोल्शेविकों ने प्रारंभ से ही युद्व का विरोध किया और इसे साम्राज्यवाद तथा जन विरोधी घोषित किया था। उन्होनें घोषणा की थी कि सत्ता में आते ही वो रूस को युद्व से अलग कर देगें।

(4) बोल्शेविकों क्रांति की सफलता का एक कारण यह भी था कि प्रथम विश्व युद्व चल रहा था और ऐसे में मित्रराष्ट्र रूस में हस्तक्षेप करने की स्थिति में नही थे।

(5) जिस समय बोल्शेविकों ने सत्ता पर अधिकार किया उस समय केरेन्सकी सरकार की स्थिति अत्यंत दुर्बल थी।

3.6 रूसी क्रांति का महत्व

1917 की रूसी क्रांति का विश्व के इतिहास में विशेष महत्व है। इस महान क्रांति के कई महत्वपूर्ण परिणाम हुये जो राजनैतिक,सामाजिक आर्थिक क्षेत्र के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को भी प्रभावित करने वाले सिद्व हुये–

(1) इससे रूस में निरंकुंश शासन का अंत हुआ और सोवियत समाजवादी गणराज्य की स्थापना हुई। यह पहला श्रमिक गणराज्य था।

(2) सर्वहारा वर्ग की सरकार में इस तथ्य को प्रमुखता दी गयी कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुसार काम दिया जाये और प्रत्येक को उसके काम के अनुसार पारिश्रमिक मिले।

(3) नयी साम्यवादी सरकार ने देश की सम्पदा और समस्त साधनों का अधिक से अधिक उपयोग लोगों के आर्थिक,सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर को उठाने के लिए किया। फलस्वरूप अत्यंत पिछडा हुआ रूस एक सशक्त राष्ट्र के रूप में विकसित हुआ।

(4) मजदूरों और किसानों का परम्परागत शोषण समाप्त हुआ।

(5) पहली बार रूस में मार्क्स के सिद्वांतों को क्रियान्वित किया गया।पूँजीवादी का विनाश किया गया और संपूर्ण सम्पति,भूमिका, राष्ट्रीयकरण किया गया।

(6) इस क्रांति ने विश्व को आर्थिक क्रांति का भी संदेश दिया।

(7) इस क्रांति ने विश्व के अनेक देशों को भी प्रभावित किया इन क्रांति द्वारा स्थापित व्यवस्था ने चीन के राष्ट्रनिर्माता सनयातसेन को चीनी पुर्नर्निर्माण व एकीकरण में प्रेरणा प्रदान की।

(8) इस क्रांति ने भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं को भी प्रभावित किया। पं0 जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है– रूसी क्रांति ने मुझे राजनीति को सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से सोचने के लिए प्रेरित किया था।

(9) इस क्रांति ने विश्व में समाजवादी विचारधारा को लोकप्रिय बनाया।विश्व में उपनिवेशकवाद पूँजीवाद व साम्राज्यवाद के विरूद्व लोगों को आंदोलित किया।

(10) इस प्रकार इस क्रांति के पश्चात नवीन रूस की स्थापना हुई। वहां पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा इस क्रांति के पश्चात रूस विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय, रंगमंचपर सशक्त राष्ट्र के रूप में उदित हुआ।

बोध प्रश्न –2

(1) 1917 ई. की क्रांति के समय रूस का शासक कौन था।

(अ) जार निकोलस प्रथम (ब) जार निकोलस द्वितीय

(स) जार एलेक्जेडर प्रथम (द) जार एलेक्जेण्डर द्वितीय

(2) बोल्शविक क्रांति हुई।

(अ) मार्च 1917 में (ब) मई 1917 में

(स) सितम्बर 1917 में (द) नबम्बर 1917 में

(3) बोल्शेविक क्रांति की सफलता के क्या कारण थे।

(4) विश्व इतिहास में रूसी क्रांति का क्या महत्व है।

3.7 लेनिन–एक परिचय

बोल्शेविक दल का नेता ब्लादीमीर उलिआनोव था। जो निकोलस लेनिन के नाम से इतिहास में प्रसिद्व हुआ। उसका जन्म 1870 में हुआ था। उसने 17 वर्ष की उम्र में कजागा विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा हेतु प्रवेश लिया। 1893 में वह सेण्ट पीटर्सवर्ग गया और साम्यवादी दल का नेता बन गया। वह क्रांतिकारी विचारधारा का व्यक्ति था। उसने भावी क्रांति के लिए मजदूरों को संगठित किया। 1895 में उसकों जेल भेज दिया गया और बाद में साइबेरिया के लिए निर्वासित भी कर दिया गया। 1900 में मुक्त होकर वह पुनः रूस वापस आ गया।एक समाचार पत्र में छपे लेनिन के विचारों से प्रभावित होकर रूस की जनता ने क्रांति करने का निश्चय किया। जिस समय रूस की जनता ने क्रांति का आरंभ किया, लेनिन स्विटजरलैण्ड में था। वह तुरंत ही जर्मनी की सहायता से रूस जा पहुॅचा लेनिन के उत्थान के बाद रूस की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति में तेजी से परिवर्तन आया।इसी समय बोल्शेविक दल का दूसरा नेता ट्रोटस्की भी रूस वापस आया। इन दोनों ने ही दल को नवजीवन प्रदान किया।

लेनिन का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था। उसकी विचारधारा अत्यंत स्पष्ट थी। उसने अपने देश के लोगों को यह विश्वास दिलाया था कि उसका दल केवल सोवियत सरकार में विश्वास करता है।जिसका प्रतिनिधित्व किसानों, मजदूरों और सैनिकों के द्वारा किया जायेगा। वह देश के सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन का पक्षधर था जिसके अन्तर्गत न कोई जमींदार होगा और न ही कोई पूंजीपति। यही बोल्शेविक दल का मूल सिद्वांत था। इस सरकार में लेनिन प्रधानमंत्री था। वह वास्तव में नये रूस का सही अर्थो में निर्माता था। वह एक महान दार्शनिक तथा दृढ निश्चयी व्यक्ति था। उसकी मृत्यु 21 जनवरी 1924 ई0 को हुई थी।

3.8 लेनिन सरकार की मुख्य उपलब्धियॉ

सरकार गठन के बाद बोल्शेविकों के सामने अनेक समस्याऐं थी। जिनमें प्रमुख थी– युद्व को समाप्त करना, देश में फैली अराजकता को समाप्त करना,आर्थिक स्थिति सुधारना, खाद्यान्य की कमी दूर करना, प्रशासन को संगठित करना आदि जिस साहस से बोल्शेविकों ने सत्ता पर अधिकार किया था। उसी

साहस से उन्होंने समस्याओं का सामना भी किया और निम्न उपलब्धियॉ हासिल कीं।

3.8.1 सोवियत संविधान

रूस के लिए संविधान का निर्माण किया गया। इसके अनुसार रूस को यूनियन आफ सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक्स (U.S.S.R.) घोषित किया गया। इसमें व्यस्क मताधिकार दिया गया। लेनिन प्रतिबंध यह था कि मतदाता को उत्पादक श्रम के द्वारा अपनी जीविका अर्जित करना आवश्यक था। शासन की सत्ता अखिल रूसी कांग्रेस में निहित की गई। यह कांग्रेस केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती थी जिसे कानून बनाने का अधिकार था।

3.8.2 जर्मनी से शांति–संबंध

बोल्शेविक सरकार के समक्ष तात्कालिक समस्या युद्व बंद करने की थी। जिससे वे साम्यवाद की स्थापना पर ध्यान दे सकें। इसके लिए 3 मार्च 1918 को रूस व जर्मनी के बीच एक संधि सम्पन्न हुई जो ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि के नाम से जानी जाती है। यह एक निर्दयतापूर्ण अपमानजनक संधि थी। लेकिन बोल्शेविकों ने शांति को अधिक महत्व दिया। क्योंकि रूस युद्व जारी नही रख सकता था और सरकार के समक्ष कोई दूसरा विकल्प नही था। राष्ट्रसंघ के मुख्य कार्य निम्न है–

3.8.3 गृह युद्व

रूस में लगभग तीन वर्षो तक गृह–युद्व चलता रहा। इस गृहयुद्व के कई कारण थे जमींदार,उद्यौगपति,नौकरशाही, जनतंत्रवादी और मेंन्शेविक दल के लोग तथा सैनिक अधिकारी और बुद्विजीवी वर्ग के कई लोग बोल्शेविक सरकार से नाराज थे। इन सभी के विरूद्व बोल्शेविकों ने दमन एवं आतंकपूर्ण तरीकों को अपनाया। एक विशेष न्यायालय 'चेका' की स्थापना की गई। जिसने लगभग 10 हजार व्यक्तियों को मृत्युदण्ड दिया। जुलाई 1918 में जार निकोलस को उसके समस्त परिवार के साथ गोली मार दी गई। यह दुखान्त घटना रूस के इतिहास में लाल आतंक के नाम से जानी जाती है।इस प्रकार रक्तिम तरीके से बोल्शेविकों ने गृहयुद्व को समाप्त किया।

3.8.4 विदशी हस्तक्षेप

गृहयुद्व के दौरान रूस को आंतरिक कठिनाई व नाजुक परिस्थिति का मित्रराष्ट्रों ने लाभ उठाया और रूस के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप का प्रयास किया ताकि वे बोल्शेविकों की सरकार को उखाड फेकें। मित्रराष्ट्र रूस में मध्यमवर्गीय सरकार स्थापित करना चाहते थे इसके अलावा बोल्शेविकों ने मित्रराष्ट्रों के ऋणों को भी अस्वीकार कर दिया था। इससे भी वे नाराज थे। अंग्रेज व फ्रांसिसी सेनाओं ने बोल्शेविक विरोधियों का खुलकर समर्थन किया किन्तु अंत में बोल्शेविक सरकार को ही सफलता प्राप्त हुई। उनकी विजय का कारण जनता की देशभक्ति थी।

3.9 नवीन आर्थिक नीति

लेनिन अपने विरोधियों का दमन करने में पूरी तरह सफल रहा था। फिर भी रूस की गिरती हुई आर्थिक दशा उसके लिए चिंता का बिषय थी। वह एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। वह जानता था कि जनता के असंतोष को दूर करने के

लिए रूस की आर्थिक दशा में तुरंत परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता है। इसलिए उसने फिर से पूंजीवादी व्यवस्था की तरफ लौट जाने का निर्णय किया और 1931 में नयी आर्थिक नीति (New economic policy) की घोषणा की। वास्तव में यह नीति पूँजीवादी और समाजवाद के बीच एक समझौता थी। इसके माध्यम से कृषि,उद्योग, तथा कारखानों आदि में अनेक परिवर्तन किये गये। इस नीति की विशेषताऐं निम्न है–

(1) किसानों से अनाज की वसूली बंद कर दी गयी और इसके बदले मे निश्चित कर देने का आग्रह किया गया।

(2) किसानों को खुले बाजार में अपने अनाज को बेचने की आज्ञा दी गयी।

(3) आन्तरिक व्यापार से प्रतिबंध समाप्त कर दिया गया।

(4) छोटे पैमाने पर व्यक्तिगत कारखानों को चलाने की अनुमति दी गयी। इनके स्वामी अपनी इच्छानुसार माल को बना अथवा बेंच सकते थे।

(5) केवल बडे कारखानों पर राष्ट्रीयकरण के सिद्वांत को लागू किया गया।

(6) कुछ प्रतिबन्धों के साथ व्यक्तिगत फुटकर व्यापार की भी आज्ञा प्रदान कर दी गयी थी।

(7) रूस में पूँजी का अत्यधिक अभाव था। इसलिए विदेशी पूँजी को लाभ के आधार पर नियंत्रित किया गया।

(8) अनिवार्य श्रम की व्यवस्था को भी समाप्त कर दिया गया।

(9) व्यापारिक संघों की अनिवार्य सदस्यता समाप्त कर दी गयी।

(10) विभिन्न स्तरों पर बैंक खोले गये।

(11) व्यक्तिगत सम्पत्ति और जीवन का बीमा भी राजकीय ऐजेंसी द्वारा प्रारंभ किया गया।

यह नीति पूँजीवाद और समाजवाद के मध्य का मार्ग थी। इस नीति के संबंध में प्रसिद्व इतिहासकार बेन्स ने लिखा है ''रूस की आर्थिक व्यवस्था में राज्य समाजवाद,राज्य पूँजीवाद और व्यक्तिगत पूँजीवाद का विचित्र मिश्रण स्पष्ट दिखायी पडता है।इससे उत्पादन में वृद्वि हुई, जनता संतुष्ट हुई और रूस आर्थिक संकट से मुक्त हो गया।

बोध प्रश्न –3

(1) लेनिन की मृत्यु हुई।

(अ) 19जनवरी 1924 (ब) 20 जनवरी 1924

(स) 21 जनवरी 1924 (द) 22 जनवरी 1924

(2) नवम्बर 1917 की बोल्शेविक क्रांति के समय सबसे प्रमुख नेता कौन था।

(अ) करेन्सकी (ब) ट्रोरस्की

(स) स्टालिन (द) लेनिन

(3) लेनिन का संक्षिप्त जीवन परिचय बताये।

(4) लेनिन की नवीन आर्थिक नीति के बिषय में संक्षेप में लिखे।

3.10 सारांश

1917 की रूसी क्रांति विश्व के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इससे रूस में समाजवादी गणराज्य की स्थापना हुई। इससे किसानों और मजदूरों को समाज में उनका वाजिब हक मिला। रूस विश्व में एक सशक्त राष्ट्र के रूप में विकसित हुआ। विश्व को लेनिन जैसा एक महान दार्शनिक मिला जिसने एक नयी आर्थिक नीति का प्रतिपादन करके रूस की अर्थव्यवस्था को सुधारने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3.9 शब्दावली

आमूलचूल	–	पूरी तरह से ।
दुष्परिणाम	–	बुरा परिणाम।
सार्वभौम	–	जिस पर कोई अंकुश(रोक) न हो।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

(1) (अ) √ (ब) × (स) × (द)×

(2) देखें भाग 3.2 – 3

(3) देखें भाग 3.2 – 4

बोध प्रश्न :– 2

(1) (अ) × (ब) √ (स) × (द) ×

(2) (अ) × (ब) × (स) × (द) √

(3) देखें भाग 3.5.2

(4) देखें भाग 3.6

बोध प्रश्न :– 3

(1) (अ) × (ब) × (स) √ (द) ×

(2) (अ) × (ब) × (स) × (द) √

(3) देखें भाग 3.7

(4) देखें भाग 3.9

इकाई–4

आधुनिक तुर्की का निमार्ण

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 तुर्की में क्रान्ति

4.3 तुर्की गणराज्य की स्थापना

4.4 तुर्की की प्रजातन्त्रात्मक सरकार के मूल सिद्वान्त

4.5 मुस्तफा कमाल पाशा – एक जीवन परिचय

4.6 कमाल पाशा के सामाजिक सुधार

4.6.1 शिक्षा संबंधी सुधार

4.6.2 भाषा और लिपि में सुधार

4.6.3 महिलाओं की स्थिति में सुधार

4.6.4 वेश भूषा में सुधार

4.6.5 नये इतिहास की परिकल्पना

4.6.6 पारिवारिक नामों को ग्रहण करना

4.7 प्रशासनिक और कानूनी सुधार

4.8 आर्थिक सुधार

4.9 धार्मिक सुधार

4.10 कमाल पाशा के कार्यो का मूल्यांकन

4.11 सांरांश

4.12 शब्दावली

4.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

पेरिस शान्ति सम्मेलन में तुर्की को सेवर्स की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पडे थे। यह सन्धि तुर्की के लिये अत्यन्त अपमानजनक व कठोर थी। इस सन्धि से उत्पन्न निराशा को दूर करके कमाल पाशा ने आधुनिक तुर्की का निमार्ण किया इस इकाई में हम जानेगें।

- इन्ही कमाल पाशा के बारे में
- तुर्की में हुई क्रान्ति के विषय में
- तुर्की में गणतन्त्र की स्थापना के विषय में तथा
- कमाल पाशा द्वारा किये गये आन्तरिक एवं बाह्य सुधारों के विषय में

4.1 प्रस्तावना

19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही तुर्की साम्राज्य यूरोप के देशों के सम्मुख अनेक जटिल समस्यायें पैदा कर रहा था। इसे यूरोप के इतिहास में पूर्वी समस्या के नाम से पुकारा जाता था। इस समस्या के कारण तुर्की को यूरोप का बीमार व्यक्ति कहा जाता था। प्रथम विश्व युद्व में हुई पराजय के बाद हुई सेवर्स सन्धि की कठोर शर्तो के कारण तुर्की की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। इस समय मुस्तफा कमाल पाशा ने अपने प्रयत्नों से तुर्की को एक उन्नतिशील राष्ट्र बनाया। उसके तुर्की में कई सामाजिक ,धार्मिक एवं आर्थिक सुधार किये। उसने तुर्की का पश्चिमीकरण करने का पूरा प्रयास किया। और उसे एक आधुनिक राष्ट्र बनाया।

4.2 तुर्की में क्रान्ति

प्रथम विश्व युद्व में हुई हार के कारण तुर्की के नक्शे में आमूलचूल परिवर्तन हो गया था। उसकी सीमाओं को अत्यन्त सीमित कर दिया गया था। यद्यपि तुर्की के सुल्तान ने इस सन्धि को स्वीकार कर लिया था किन्तु मुस्तफाकमाल पाशा ने इस सन्धि की शर्तो का घोर विरोध किया। उसने सुल्तान को इसे पूरी तरह से अस्वीकार करने की सलाह दी। परन्तु जब वह सुल्तान को अपने पक्ष में करने में असफल हो गया तो उसने तुर्की के राष्ट्रवादियों और देश भक्तों को तुर्की की सरकार के विरूद्व विद्रोह करने के लिए प्रोत्साहित किया। उसने अनातोलियॉ के प्रदेश में एक स्वतन्त्र सरकार की स्थापना की और अंकारा नगर को अपनी राजधानी वनाया। उसने यूरोपीय शक्तियों को यह चेतावनी भी दी कि वे तुर्की साम्राज्य के किसी भाग पर अपना अधिकार न करें इस प्रकार तुर्की में एक क्रान्ति की शुरूआत हुई।

अंकारा सरकार ने इटली और यूनान के विरूद्व उन प्रदेशों को पुनः प्राप्त करने के लिये युद्व प्रारम्भ कर दिया जिन पर उन्होने सेवर्स की सन्धि के अनुसार अधिकार कर लिया था। इस पर इटली ने तो बिना रक्त की एक भी बूँद बहाये तुर्की के प्रदेशों को खाली कर दिया किन्तु यूनानी सेना ने वापस लौटने से इन्कार कर दिया। अन्त में युद्व में वह तुर्की के विरूद्व बुरी तरह पराजित हुआ। यूनान और तुर्की के मध्य लॉसेन

में 24 जुलाई 1923 में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार तुर्की के बहुत से छीने गये प्रदेश उसे पुनः वापिस मिल गये। युद्व की समाप्ति के पश्चात जितनी भी संधिया हुई उनमें केवल लॉसेन सन्धि ही ऐसी थी जो कि दोनों पक्षो के मध्य आपसी समझौते से हुई थी। तुर्की का राजनीतिक क्षेत्रफल पहले की अपेक्षा काफी बढ गया था और तुर्की ने प्रायः वह सब प्राप्त कर लिया जो कि उसकी मुख्य मॉग थी।

तुर्की पर लगाये गये सारे आर्थिक नियन्त्रण समाप्त कर दिये गये। उसकी सेना पर भी अब कोई बन्धन नही रहा। पुरानी आटोमन परम्परा को खत्म कर दिया गया और तुर्की को स्वतन्त्र राष्ट्रीय अस्तित्व प्राप्त हुआ। वास्तव में लॉसेन की सन्धि तुर्की के राष्ट्रवादियों की एक बहुत बडी विजय थी।

4.3 तुर्की गणराज्य की स्थापना

लॉसेन सम्मेलन शुरू होने के पूर्व ही तुर्की का सुल्तान गद्दी छोडकर भाग गया था। यह क्रान्तिकारियों की एक महान सफलता थी। सुल्तान के पलायन के कुछ समय बाद देश में चुनाव कराये गये तथा ग्रैड नेशनल एसेम्बली(राष्ट्रीय सभा) का गणन किया गया। इस सभा ने 23 अक्टुवर 1923 को तुर्की को गणतन्त्र घोषित कर दिया। और सर्वसम्मति से मुस्तफा कमाल पाशा को इस नवीन गणराज्य का राष्ट्रपति निर्वाचित किया। अर्पेल 1924 में राष्ट्रीय सभा ने गणराज्य के लिये एक नवीन संविधान की घोषणा की जिसमें एक सदन वाली संसद की स्थापना की गयीं। यह भी तय किया गया की जनता क`मत द्वारा इस राष्ट्रीय सभा का निर्वाचन किया जायेगा जो तुर्की की संसद कहलायेगी। प्रत्येक छह महाने पर संसद का अधिवेशन होगा। इसी संसद द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव किया जायेगा और इसी संसद के सदस्यों में से कोई एक व्यक्ति प्रधानमंत्री चुना जायेगा। शासन को चलाने के लिये मंत्रिमण्डल होगा तथा वह संसद के प्रति उत्तरदायी होगा।

4.4 तुर्की की प्रजातन्त्रात्मक सरकार के मूल सिद्वान्त

तुर्की में प्रजातन्त्र की घोषणा के समय कमाल पाशा ने अपनी सरकार के छः मूलभूत सिद्वान्तों की घोषणा की थी। जो निम्न है।

1. राजतन्त्र को समाप्त कर दिया जायेगा और वस्तु रूप में देश में प्रजातन्त्र की सथापना की जायेगी।
2. सरकार राष्ट्रवाद की नीति का पालन करेगी। कमाल पाशा ने स्पष्ट रूप से यह भी घोषित किया, वे सभी लोग जो तुर्की में निवास करते है, तुर्की भाषा बोलते है, तुर्की आदेशों का पालन करते है, तुर्की कानूनों का पालन करते है और तुर्की को अपना राष्ट्र समझते है उन्हे तुर्की का नागरिक समझा जायेगा।
3. जनता की सर्वोच्चता को स्वीकार किया जायेगा।
4. राष्ट्र के हित में बडे कारखानों का राष्ट्रीयकरण किया जायेगा।
5. देश का धीमा किन्तु निरन्तर विकास किया जायेगा।
6. तुर्की को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया जायेगा।

इन सिद्वान्तो को तुर्की की नयी सरकार में कठोरता से लागू किया गया। शासन को धर्म से पूरी तरह अलग कर दिया गया और प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी।

बोध प्रश्न– 1

1. यूरोप का बीमार व्यक्ति किसे कहा जाता था।

   (1) फ्रांस (2) इटली

   (3) तुर्की (4) यूनान

2. लॉसेन की सन्धि हुई

   (1) 1919 (2) 1920

   (3) 1922 (4) 1923

3. तुर्की की गणतन्त्र घोषित किया गया।

   (1) 1922 (2) 1923

   (3) 1924 (4) 1925

4. तुर्की की क्रान्ति के विषय में संक्षेप में लिखें।

5. तुर्की की प्रजातन्त्रात्मक सरकार के मूल सिद्वान्त क्या थे।

4.5 मुस्तफा कमाल पाशा

एक जीवन परिचय – मुस्तफा कमाल पाशा का जन्म 1981 में सेलोनीका के एक साधारण परिवार में हुआ था। उसका पिता अली राजा एफन्दी शुरू में एक मामूली सरकारी नौकर था बाद में उसने लकडी का व्यापार शुरू किया। लेकिन 1988 में ही उसके पिता जी की मृत्यु हो गयी, जिसके कारण बचपन में ही उसे अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पडा। 1905 में उसने अपनी शिक्षा पूरी की और एक सैनिक अधिकारी बन गया। 1907 में उसकी तरक्की हुई उसे मेजर का पद देकर मेसीडोनिया भेजा गया। फ्रांस के प्रसिद्व दार्शनिक वाल्टेयर के विचारों का कमाल पाशा पर अत्यधिक प्रभाव था। उसने वाल्टेयर के ग्रन्थों का महान अध्ययन किया था और वह समझता था कि तुर्की के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक व आर्थिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जाने चाहिये। जैसे ही तुर्की के क्रिमिनल इन्वेस्टीगेशन विभाग को कमाल पाशा के कान्तिकारी विचारों की सूचना प्राप्त हुई उन्होने उसे बन्दी बनाकर जेल भेज दिया। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो में उसे जेल से मुक्त किया गया। बाल्कन युद्व के समय भी कमाल पाशा ने तुर्की सेना में भर्ती होकर अपनी बफादारी और बहादुरी को सिद्व किया। अतः उसे सेना में उच्च पद पर प्रोन्नत किया गया। प्रथम विश्व युद्ध के समय भी उसने अपनी योग्यता का परिचय दिया। लेकिन सेब्रस की सन्धि से हुये अपमान के विरोध में उसने देशवासियों में देशभक्ति तथा स्वाभिमान का एक नया मंत्र फूका। लोगों में अपूर्व जागरण का संचार हुआ और वे युद्व के लिये तैयार हो गये। अन्त में लॉसेन की सन्धि द्वारा कमालपाशा तुर्की को खोया हुआ सम्मान वापिस दिलाने में सफल हुआ। वह तुर्की गणराज्य का प्रथम राष्ट्रपति बना और इस पदपर वह अपनी मृत्यु के समय 10 नबम्बर 1938 तक बना रहा कमाल पाशा को गाजी की उपाधि दी गयी थी।

4.6 कमाल पाशा के सामाजिक सुधार

कमाल पाशा पर पाश्चात्य सभ्यता का गहरा प्रभाव था। उसका दृढ विश्वास था। कि यूरोपीय सभ्यता को अपनाकर ही तुर्की का निर्माण नये सिरे से किया जा सकता है। इसलिये उसके सभी सुधारों का मुख्य उददेश्य तुर्की का यूरोपीयकरण करना था।

4.6.1 शिक्षा संबधी सुधार

कमालपाशा शिक्षा के महतव को बखूबी समझता था। उसने तुर्की में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की शुरूआत की। लेकिन इस कार्य में उसे अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पडां। तुर्की में स्कूल भवन नही थे, क्योंकि अभी तक शिक्षा का प्रबंध मस्जिदों में होता था । धन के अभाव के कारण नये भवनो का निर्माण और अध्यापकों की नियुक्ति भी मुश्किल थी। लेकिन कमाल ने बडे धैर्य से काम लिया उसने कई स्कूल भवनों का निर्माण कराया। उसने देश भर में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क कर दी। वह भेष बदलकर स्वयं शिक्षण संस्थाओं का जायजा लिया करता था। माध्यमिक शिक्षा में भी उसने कई सुधार किये। नये–नये स्कूल खोले गये और पर्याप्त मात्रा में शिक्षकों की नियुक्ति की गयी। विदेशों से भी शिक्षक बुलाये गये। विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा का भी कमाल ने पुनर्गठन किया । इसके लिये स्विट्जरलैंड के प्रोफेसर माल्के के नेतृत्व में एक विस्तृत योजना तैयार की गयी। इस्तमबूल में एक मेडिकल कॉलेज खोला गया । कई अन्य विषयों के शिक्षकों को भी विदेशों से बुलाया गया। इस तरह तुर्की में शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा उठ गया । कमाल की सफलता का मुख्य रहस्य शिक्षा के क्षेत्र में सुधार था।

4.6.2भाषा और लिपि में सुधार

शिक्षा में सुधार के लिए भाषा और लिपि में सुधार करना आवश्यक थां अतः 1928 में क्लिष्ट (कठिन) अरबी लिपि को समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर रोमन लिपि को लागू किया गया। सरकारी नौकरी के लिये रोमन लिपि का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया। इस कारण नवीन लिपि का जोरो से प्रचार हुआ नवीन लिपि को लोकप्रिय बनाने के लिये विदेशों से छापाखाने की मशीन मंगायी गयी। इसके कारण इस काल में समाचार पत्रों का भी काफी विकास हुआ।

4.6.3महिलाओं की स्थिति में सुधार

तुर्की में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। उन्हे कोई राजनीतिक या सामाजिक अधिकार प्राप्त नही था। उनको हमेशा परदे के अन्दर रहना। उनके लिए शिक्षा का कोई प्रबन्ध नही था। कमाल पाशा जानता था कि स्त्रियों के उत्थान के बिना राष्ट्र का उत्थान कठिन है। अतः उसने परदा–प्रथा को समाप्त कर दिया। महिलाओं के लिए पृथक स्कूल और क्लब खोले गये। धार्मिक विवाह के स्थान पर सिविल मैरिज को लागू किया गया। सत्रह वर्ष से कम उम्र की लडकियों का विवाह बर्जित कर दिया गया। बहु पत्नि विवाह और पत्नि त्याग को समाप्त कर दिया गया। तलाक के मामले में पति पत्नि दोनो को समान अधिकार दिये गये। सबसे महत्वपूर्ण तो यह था कि मुस्लिम औरतों को गैर मुस्लिमों के साथ विवाह करने की अनुमति देदी गयी। इस बात को इस्लामी दुनिया कभी सोच भी नही सकती थी। कमाल पाशा ने महिलाओं के राजनैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के

भी प्रत्यन किये उन्हे वस्क मताधिकार प्रदान किया गया। वे कई सरकारी पदो पर भी आसीन थी। तथा वे राष्ट्रीय सभा के चुनाव में भी खडी हो सकती थी।

4.6.4 वेश भूषा में सुधार

वेश भूषा के मामले में कमालपाशा यूरोपीय परिधानों का समर्थक था। 25 नबम्बर 1925 को एक कानून द्वारा हर व्यक्ति को तुर्की टोपी फेज को पहनने तथा स्त्रियों के लिए बुरका धारण करने की मनाही कर दी गयी। अब सबके लिए छज्जेदार टोप पहनना अनिवार्य कर दिया गया और ऐसा न करना एक जुर्म घोषित कर दिया गया। यह कानून युगान्तकारी था क्योकि टोप पहनकर नमाज नही पडी जा सकती थी। अतः इस कानून का सीधा अर्थ था कि नमाज की मनाही या अवहेलना। इससे मुस्लिम जगत में शोर मच गया। कट्टर पंथियों ने इस निर्णय का बडा कडा विरोध किया लेकिन कमाल अपने निर्णय से हटने वाला नही था। उसने विरोधियों को दबाना शुरू किया तथा यह आज्ञा भी निकलवा दी कि अव सभी लोग यूरोपीय पोशाक पहने कोट– पतलून धारण करे तथा टाई का प्रयोग करे।

4.6.5 नये इतिहास की परिकल्पना

तुर्की पराम्परा को एतिहासिक आधार देने के लिए 1930 में तुर्की इतिहास परिषद् की स्थापना की गयी। इसका पहला सम्मेलन 1932 में अंकारा में हुआ इसमें कमालपाशा के निर्देश पर यह सिद्वान्त प्रस्तुत किया गया कि तुर्क श्वेत रंग की आर्य जाति थी। और मध्य एशिया उनका मूल स्थान था। वही से तुर्क इधर उधर बिखरे जिससे चीनी, भारतीय, पश्चिम एशियाई संस्कृतियों का विकास हुआ। सभी स्कूलों में इसी सिद्वान्त पर आधारित इतिहास पढाया जाने लगां

4.6.6 पारिवारिक नामों को गृहण करना

कमाल पाशा ने पश्चिमी सभ्यता की किसी भी विशेषता को नजर अन्दाज नही किया इसलिये उसने तुर्की के प्रत्येक व्यक्ति को अपना पारिवारिक नाम ग्रहण करने का आदेश दिया । कमाल पाशा ने स्वयं मुस्तफा शब्द को अपने नाम से हटा दिया क्योंकि यह अरबी शब्द से बना था। राष्ट्रीय सभा की प्रार्थना पर उसने स्वये अतातुर्क की उपाधि ग्रहण की जिसका अर्थ था तुर्कों का पिता ।

बोध प्रश्नः2 –

(1) कमाल पाशा का जन्म हुआ

(1) 1880 (2) 1881

(3) 1871 (4) 1872

(2) कमाल पाशा की मृत्यु हुई

(1) 10नवम्बर 1938 (2) 10 नवम्बर 1939

(3) 11 नवम्बर 1938 (4) 11 नवम्बर 1939

(3) मुस्तफा कमाल पाशा के शिक्षा सम्बन्धी सुधार बतायें।

(4) कमाल पाशा ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिये क्या प्रयास किये?

4.7 प्रशासनिक और कानूनी सुधार

कमाल पाशा ने 1926 में प्रशासनिक सुधार किये देश को बासठ प्रान्तो में विभक्त कर दिया गया और प्रान्तो को चार सौ तीस जिलो में इसके साथ ही देश में नयी न्याय– व्यवस्था भी लागू की गयी कमाल पाशा ने देश से सुल्तानियत को समाप्त कर दिया। अप्रैल 1924 में राष्ट्रीय संसद में धार्मिक अदालतो का दिवानी मामलों पर विचार करने का अधिकार समाप्त कर दिया। धार्मिक मामलों की सुनवायी के लिये दो संस्थायों सथापित की गयी। इसके अलावा पुराने कानून रदद करके स्विटजरलैण्ड की प्रणाली के दिवानी कानून प्रचलित किये गये। इटालियन दण्ड विधान औरजर्मन वाणिज्य सम्बन्धी कानून लागू किये गये। परिवार सम्बन्धि नियमों का नये सिरे से निर्माण किया गया। इस प्रकार कानूनी व्यवस्था में आमूल परिर्तन किया गया।

4.8 आर्थिक सुधार

कमालपाशा ने देश के अर्थिक ढाचे में भी आमूलचूल परिर्वन भी किये। उसने खेतो के यन्त्रिकरण। उधोगो के विकास और यातायात की उन्नित पर बहुत जोर दिये उसने उधोगो के विकास को निजी हाथो में छोडने की बजाय राज्य के आधीन किया उसका मूल मंत्र राष्ट्रवाद था। 1 अक्टुवर 1929 को सरकार ने देशी उघोगों की रक्षा के लिये वाहर से माल के आयात पर चुगी की दरे बढा दी और पाबंदिया लगा दी। 1933 में सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना बनायी जो 1939 तक चली। इसमें उपयोग की सामग्री के उत्पादन पर काफी बल दिया गया। इस योजना के अर्न्तगत तुर्की में कई उघोग धन्धे खोले गये बडे –बडे कल कारखानों का निमार्ण हुआ रेलवे विकास पर भी ध्यान दिया गया। शराब तम्बाकू, नमक , अस्त्र शस्त्र आदि उघौगों में राज्य का एकाधिकार बनाये रखा गया। नयी नयी सडको का निमार्ण व पुरानी सडको की मरम्मत की गयी। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों के लिये अलग अलग योजनाये बनायी गयी और उन्हे लागू किया गया और कृषि कालेज तथा कृषि बैंक खोले गये अमेरिका से ट्रैक्टर मॅगवायें गये 1936 में नये श्रम कानून लागू किये गये चेम्बर ऑफ कॉर्म्स की स्थापना की गयी। विदेशी व्यापार को बढाने का प्रयास किया गया। 1929 से 1939 तक उघौगिक उत्पादन की वृद्वि 0.14 प्रतिशत से 0.2 प्रतिशत हो गयी जिससे जीवन स्तर बढ गया। इस तरह कमालपाशा ने तुर्की का आर्थिक कायाकल्प कर दिया।

4.9 धार्मिक सुधार

तुर्की में सल्तनत तो खत्म हो चुकी थी लेकिन खिलाफत वाकी थी। 03 मार्च 1924 को तुर्की संसद ने खिलाफत को भंग कर खलीफा को हटाने का फैसला कर लिया था। इस कार्यवाही से तुर्की में राजनीति एवं धर्मपृथक हो गये और सभी नागरिको को समान धार्मिक स्वतन्त्रता मिली धार्मिक मामलों की सुनवायी के लिये दो गैर धार्मिक संस्थायें स्थापित की गयी। कमाल पाशा ने फेज टोंपी के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया जिससे नमाज पढने में दिक्कत आने लगी। इसका उददेश्य धार्मिक विश्वास पर चोट करना था। इसी समय उसने एक दूसरी इस्लामी मान्यता पर भी चोट की 26 दिसम्बर 1925 को उसने पराम्परागत इस्लामी तिथिक्रम का बहिस्कार कर उसकी जगह ग्रिगेरियन कैलेडर लागू किया इससे रमजान में उपवास करने वालो को बडी दिक्कते होने लगी। इसके अलावा प्रत्येक

व्यस्क स्त्री पुरूष को जब चाहे धर्म बदलने का कानूनी अधिकार दे दिया गया। मुसलिम शुक्रवार को नमाज पढते है उस दिन छुटटी रहती थी लेकिन पाशा ने रविवार को अवकाश का दिन घोषित किया

स्त्रियों को पूरी आजादी मिली ए भी इस्लाम के विरूद्व था। राजधानी अंकारा में एक भी मस्जिद का निर्माण नही करने दिया गया। राज्य की ओर से खुले आम इस्लाम धर्म के विरूद्व प्रचार प्रसार किया गया। धार्मिक मदरसे बन्द कर दिये गये। 5 अप्रैल 1928 को तुर्की गणराज्य ने इस्लाम से अपना नाता पूरी तरह से यह तय करके तोड लिया कि संविधान की दूसरी धारा से ये शब्द उडा दिये जाये कि तुर्की राज्य का धर्म इस्लाम है। 10 अप्रैल को इस निर्णय को कानून का रूप दे दिया गया। तुर्की अब एक धर्म निरपेक्ष (ला–दीनी) राज्य हो गया।

4.10 कमालपाशा के कार्यो का मूल्यांकन

एक साधरण परिवार में जन्मा बालक अपने कार्यो के दम पर तुर्की का एक महान व्यक्ति बन गया। उसने अपने कौशल से तर्की को यूरोप के अन्य देशों के समान उन्नतशील और समृद्वशाली बना दिया। उसके सुधारों का मुख्य उददेश्य तुर्की का यूरोपीय करण करना था। और उसमें वह पूरी तरह सफल रहा। यह सत्य है कि इन सुधार योजनाओं को सफल बनाने के लिये कमाल को कुछ वर्षो के लिये निरकुशं बनना पडा। लेकिन उसकी निरकुशता भी उदारता से ओतप्रोत थी। और अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये उसने कभी इसका दुरूपयोग नही किया। उसकी तानाशाही मे भी जनता समाज और राष्ट्र के हित निहित थे। उसे अपने शासन काल में कई विरोधों का सामना करना पडा उसके न केवल अपने विरोधियों को दवाया बल्कि समझा बुझा कर तर्क के द्वारा भी अपने पक्ष में करने की कोशिश की इससे उसके कई विरोधी उसके कट्टर समर्थक बन गये। उसने आथ्रिक क्षेत्र में नवीन उघोग व्यवस्था विकसित की जिससे आर्थिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। इसके अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक एवं सास्कृतिक क्षेत्र में भी कई सुधार किये उसने सम्पूर्ण तुर्की का कायापलट कर दिया। वह तुर्की के भविष्य का सृष्टा था और तुर्की की जनता उसे आदर से अतातुर्क (राष्ट्रपिता) कहा करती थी।

बोध प्रश्न :–3

(1) तुर्की में प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू हुई

(1) 1933 (2) 1935

(3) 1936 (4) 1939

(2) कमालपाशा ने तुर्की में अवकाश का दिन घोषित किया।

(1) शुक्रवार (2) शनिवार

(3) सोमवार (4) रविवार

(3) कमालपाशा के धार्मिक सुधारों को संक्षेंप में लिखे।

(4) कमालपाशा ने तुर्की की अर्थ व्यवस्था को किस तरह प्रभावित किया।

सारांश–

प्रथम विश्व युद्व में हुये अपमान और नुकसान की भरपाई करने के लिये तुर्की में एक नायक का उदय हुआ जिसने अपने प्रयासें से सर्व प्रथम तुर्की को एक गणराज्य बनाया तथा वहॉ प्रजातन्त्रात्मक सरकार की स्थापना की । उसने देश में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधार करके तुर्की को एक उन्नति शील राष्ट बनाया। उसने तुर्की का पश्चिमी करण किया तथा विश्व में तुर्की को एक समृद्वशाली एवं प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में स्थापित किया।

शब्दावली–

गजी	–	रक्षक तथा काफिरो के विरूद्व लडने वाला
क्लिष्ट	–	कठिन
वर्जित	–	निषेध, मना

बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न :–1

(1) 1– (×) 2– (×) 3– (√) 4– (×)

(2) 1– (×) 2– (×) 3– (×) 4– (√)

(3) 1– (×) 2– (√) 3– (×) 4– (×)

(4) देखे भाग 4.2

(5) देखे भाग 4.4

बोध प्रश्न :–2

(1) 1– (×) 2– (√) 3– (×) 4– (×)

(2) 1– (√) 2– (×) 3– (×) 4– (×)

(3) देखे भाग 4.6.1

(4) देखे भाग 4.6.3

बोध प्रश्न :–3

(1) 1– (√) 2– (×) 3– (×) 4– (×)

(2) 1– (×) 2– (×) 3– (√) 4– (×)

(3) देखे भाग 4.9

(4) देखे भाग 4.8

इकाई–5

प्रथम विश्व युद्व के बाद एशिया

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 एशिया–एक परिचय

5.3 एशियाई राष्ट्रों की समस्यायें

5.4 पश्चिम का प्रभाव

5.5 राष्ट्रीयता का विकास

5.6 साम्राज्यवाद का पतन एवं साम्यवाद का प्रसार

5.7 प्रथम विश्व युद्व के बाद एशिया के प्रमुख देन

- **5.7.1** चीन
- **5.7.2** जापान
- **5.7.3** उत्तर व दक्षिण कोरिया
- **5.7.4** भारत

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस ईकाई में हम प्राप्त करगे

- एशिया महादीप का एक परिचय
- एशियाई शब्दों को समस्याओं की विस्तृत जानकारी
- एशियाई देशों पर पश्चिम के प्रभाव व उनमें राष्ट्रीयता के विकास की जानकारी
- पृथक विश्व युद्व के बाद कुछ प्रमुख एशियाई देशों की राजनीतिक स्थिति की जानकारी।

5.1 प्रस्तावना

सदियो से दासता की बेडियों में जकडा पृथ्वी का सबसे बडा महाद्वीप एशिया, पश्चिम की तुलना में काफी देर से जागा। प्रथम महायुद्व के उपरान्त एशिया में स्वशासन और राष्ट्रीयता की पहली लहर आयी। पश्चिमी ज्ञान व साहित्य ने प्रबुध्य एशियाई लोंगों में यह चेतनाजगा दी कि उनकी समस्त परेशानियों जैसे भुखमरी,गरीबपिछडाप0 का कारण उनके देश में विदेशी सत्ता की उपस्थिति हैं। उन्होने भी अपने देशों में स्वशासन व आत्मनिर्णय के अधिकार की मॉग की जो धीरे धीरे स्वतन्ता आन्दोलनों में तब्दील हो गयी। और धीरे धीरे सम्पूर्ण एशिया से साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का अन्त हुआ और अपने अधिकारो व कर्तव्यों के प्रति जागरूक एक नये एशिया का उदय हुआ।

5.2 एशिया एक परिचय

विश्व के समस्त एक महादीप में एशिया सवसे बडा है। यह पूर्व में प्रशान्त महासागर से पश्चिम में भूमध्यसागर और उत्तर में आर्कटिक महासागर से दक्षिण में हिन्द महासागर तक फैला है। इस प्रकार सम्पूर्ण भूमण्डल के एक तिहाई भू भाग पर इसका अधिकार है। और विश्व की आधे से अधिक जनसंख्या इस जमीन पर रहती है। दुनिया की सबसे अधिक आबादीवाले दो बडे देश 7 चीन और भारत भी इसी महाद्वीप के अंग है। इस महाद्वीप के शब्दो में धर्म, संस्कृति, भाषा, इतिहास, प्रथाओं परम्पराओं प्राकृतिक साधनों, जलवायु और भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से कोई समानता नही है। लेकिन आर्थिक भौतिक व तकनीकी विकास की दृष्टि से एशियाई राष्ट्रों में कुछ समानता अवश्य पाई जाती है।

यूरोप में जब औघोगिक क्रान्ति के फलस्वरूप तेजी से विकास हो रहा था उस समय एशिया के लोग इस नये परिवर्तन से बेखबर महानिद्रा में डूबे हुये थे। परिमााम

स्वरूप यूरोप प्रगति करता चला गया और एशिया पिछडता गया। अत्यधिक जनसंख्या की समस्या कच्चे माल की आवश्यकता, उत्पादन माल को खपाने के लिये मण्डियो और अतिरिक्त धन के निवेश के लिये जब यूरोपीय राष्ट्रो को अतिरिक्त भू क्षेत्र की आवश्यकता पडी तो उनकी नजर खनिज सम्पदा से धनी एशिसया पर पडी। और शीघ्र ही उन्होने एशिया में केवल जापान ही ऐसा राष्ट्र था जिससे पश्चिम से शिक्षा लेकर स्वयं को औधौगीकृत किया था और पश्चिमी के सामने डर कर खडा था।

पश्चिमी ज्ञान, साहित्य, कानून एवं विज्ञान ने धीरे–धीरे एशियाई लोगों में यह चेतना जगा दी कि उनकी आर्थिक कठिनाइयों भुखमरी, गरीबी, और दुखों का कारण उनकी भूमि पर विदेशी शासन की उपिस्थति है। वे भी पश्चिम के आत्मनिर्णय और स्वशासन के अधिकार की मांग करने लगे। इस मांग ने आगे चलकर स्वतन्त्रता आन्दोलन का रूप ले लिया और धीरे धीरे पूरे एशिया से उपनिवेशवाद का अन्त हो गया।

5.3 एशियाई राष्ट्रों की समस्यायें

एशिया शुरू से ही विभिन्न धर्म, संसकृति और राजनीतिक व्यवस्थाओं वाला महाद्वीप रहा है। सभी एशियाई राष्ट्रों का अपना अपना स्वतंत्र व्यक्तिगत है। उनकी अपनी अपनी विशेषतायें अपनी विदेशी नीति है। और वे सभी अलग अलग लक्ष्यों व साधनों को अपना रहे है।लेकिन फिर भी उनकी सामाजिक, आर्थिक और कुछ सीमा तक राजनीतिक समस्याओं, आकांक्षाओं और विचारधाराओं में समानता पायी जाती है। एशियाई लोग साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के कट्टर शत्रु है।

यहॉ के अधिकांश लोग भूमिहीन किसान है जो पेट भरने को दो वक्त की रोटी भी नही जुटा पाते। अशिक्षा, दरिद्रता और अंधविश्वास में डूबे ये लोग अनेक बीमारियों से पीडित है। यहॉ के लगभग सभी देश अतिजनसंख्या से पीडित है। यहॉ का राजनीतिक जीवन भी इस आर्थिक व राजनीतिक पिछडेपन से प्रभावित है। यदि एशिया के निवासी अपनी समस्याओं के निराकरण में सरकार अथवा अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों के साथ मिलकर जुट जायें तो उनकी भी जीवन दशाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन किये जा सकते है। किन्तु एशिया वासी रूढिवादी है। वे किसी भी परिवर्तन को अपनी परम्परा तथा रीति–रिवाजों के लिए चुनौती मानकर चलते है। इस तरह हम देखते है कि विकसित पश्चिमी जगत और पिछडे एशिया में भारी अंतर है।

5.4 पश्चिम का प्रभाव

यूरोप में हुई औघोगिक क्राति ने सम्पूर्ण विश्व के परिदृश्य को बदल कर रख दिया है। मशीनों के आ जाने से यूरोप तेजी से प्रगति कर गया वही एशिया मशीनों की चुनौती स्वीकार नही कर सका और पिछडा गया। उघोग तत्रं ने एक नये साम्राज्यवाद को जन्म दिया क्योकि हर जगह माल बनाने के लिये कच्चे माल की और तैयार माल को खपाने के लिये मंडियों की मॉग बढने लगी। अतः उन देशों पर अधिकार करने की कोशिशे तेज हुई जहॉ पर कच्चा माल उपलब्ध था। यूरोप ने अपनी दृष्टि एशिया पर घली जहॉ मनुष्य शक्ति और प्राकृतिक साधनों के ाण्डार थे। इस प्रकार लगभग सम्पूर्ण एशिया यूरोप के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष नियंत्रण में आ गया।

कई सौ वर्षो तक दास्ता की बेडिया में जकउे रहने के बाद पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव छापाखाने की सथापना यातायात की सुविधाओं के विस्तार ने रूढिवादिता के पंजे को जो एशियाई जनता को कसे हुए था। ढीला कर दिया और उसके स्थान पर राष्ट्रवादिता की भावनाएॅ जोर पकडने लगी।

एशिया में जापान पहला राष्ट्र था जिसने राष्ट्रवाद की शिक्षा हदय से ग्रहण को और सन् 1905 ई0 में शक्तिशाली रूसियों को हटाकर उसने सम्पूर्ण एशिया का सिर गौरव से ऊॅचा कर लिया। जापान ने नारा लगाया,, एशिया एशिया वासियो के लिए,, जिससे सम्पूर्ण एशिया में नवजागरण की लहर दौड गई और एशिया गम्भीरता से विदेशियों की आर्थिक ओर राजनीतिक दास्ताओं से मुक्त होने की बात सोचने लगा। प्रथम विश्व युद्व ने एशिया में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलनो को गति प्रदान की। जबकि द्वितीय विश्व युद्व ने शक्ति संतुलन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया। ब्रिटेन विश्व में द्वितीय श्रेणी की शक्ति बनकर रह गया और उपनिवेशवाद अंतिम सॉसे लेने लगा। धीरे धीरे सभी एशियाई देश एक–एक करके स्वतन्त्र होते गये।

पश्चिमी जगत ने लोगों को सिखाया कि मनुष्य का पूर्ण विकास तभी संभव है जबकि राष्ट्र उसे अपना राजनीतिक और सांस्कृतिक भविष्य बनाने की स्वतत्रता दें, तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष उचित है ओर एशिया के लोगों को यह भी सिखाया कि दुःख और निर्धरता ईश्वर के अभिशाप नही है और मनुष्य द्वारा इनका निदान सम्भव है। एशिया के अधिकाश लोगों ने इन शिक्षाओं को ग्रहण किया। इस प्रकार एशिया के नवजागरण में पाश्चात्य जगत का व्यापक प्रभाव पडा।

बोघ प्रश्न –1

1. विश्व का सबसे बडा महाद्वीप है।

   (1) अफ्रीका (2) उत्तरी अमेरिका

   (3) एशिया (4) यूरोप

2. जापान ने रूस को हराया

   (1) 1904 (2) 1905

   (3) 1906 (4) 1907

3. एशियाई शब्दो की प्रमुख समस्यायें कौन सी थी।

4. पश्चिमी जगत ने किस प्रकार एशिया वासियों को प्रभावित किया है।

5.5 राष्ट्रीयता का विकास

नवजागरण के फलस्वरूप एशिया के सभी देशों में राष्ट्रीयता की प्रबल लहर आई और इसने इस्माइल से लेकर फिलीपीन्स तक कई नये शब्दों का निमार्ण किया। राष्ट्रवादिता के कारण एशियाई देशों में नवीन चेतना आई और उनमें अनेक क्रान्तियॉ हुई। इस भावना के कारण तुर्की में मुस्तफा कमालपाशा भारत के महात्मागॉधी और जवाहरलाल नेहरू, वर्मा में औगसांग चीन में रानयात सेन और माओत्मेतुंग तथा इण्डोनेशिया में

सुकर्ण के नेतृत्व में राष्ट्रीय वाद ने अफ्रीका के नवजागरण में भी योगदान दिया। इसने अफ्रीकी जनता द्वारा चलाये जा रहे स्वतन्त्रता आन्दोलन को गति प्रदान की आधुनिक विश्व की राजनीति में एशियाई राष्ट्रवाद का एक मुख्य स्थान है। एशियाई राष्ट्रवाद की कुछ प्रमुख विशेषताऍ निम्न है।

1. प्रथम पश्चिमी राष्ट्रवाद में साम्राजवाद जातिवाद तथा युद्व प्रवृति पाई जानी हैं पाश्चात्य देशों ने अपने राष्ट्रीय गौरव की वृद्वि के लिए एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों को गुलाम बनाया। साम्राज्यों के निमार्ण में होने वाले सघर्ष एवं प्रतिद्विनद्विता के कारण ही प्रथम व द्वितीय विश्व युद्व सूत्रपात हुआ किन्तु एशियाई राष्ट्रवाद ने इन सभी प्रवृतियों को त्याग दिया जिससे एशिया महाद्वीप में राष्ट्रता के ऐसे दुशपरिणाम उत्पन्न नही हुये।

2. दूसरे एशिया में राष्ट्रीयता की भावना को न केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति हेतु प्रयोगब किया गया। वरना आर्थिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों में भी इसे प्रयुक्त किया गया।

3. तीसरे एशियाई राष्ट्रवाद की महत्वपूर्ण विशेषता यह कि यह विशाल और सार्वभौमिक है। यह अन्तर्राष्ट्रीय यहयोग, शान्ति, मानवता और विश्व बन्धुत्व की भावना का सहायक है।

इस प्रकार एशियाई राष्ट्रवाद का आधार राजनीतिक के साथ–साथ परम्परावाद, धर्म, संस्कृति और निवासियों का सामाजिक दृष्टिकोण रहा है। एशिया में पश्चिमी राष्ट्रवाद को कुछ इस प्रकार अपनाया गया है। कि वह यहॉ के रीति रिवाजों और परम्पराओं का विरोध न कर सके।

5.6 साम्राज्यवाद का पतन एवं साम्यवाद का प्रसार

एशिया में पुराने ढंग के साम्राज्यवाद का पतन हो गया है। फिर भी पाश्चायात्य साम्राज्यवादी आज भी अपने प्रभाव को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील है। पुराने ढंग के साम्राज्यवाद का सथान अब विचारधाराओं पर प्रभाव क्षेत्रों ने ले लिया है। विमिल देशों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने के लिऐ कम्यूनिस्ट और लोकतत्रवादी शक्तियों में संघर्ष जारी है। एशिया के नव स्वतन्त्र राज्यों को अपने प्रभाव में लाने के लिये वे उनकी आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप करते है। और धन, मशीनरी, शिल्प विशेषज्ञ युद्व सामग्री आदि भरपूर मात्रा में प्रदान कर रहे अपने प्रभाव में रखने का यत्न कीते है। सैनिक सन्धियों में बॉधकर भी वे एशिया के देशों को अपने प्रभाव में रखना चाहते है। जबकि जाग्रत एशिया साम्राज्वाद के हर रूप से नफरत करता है साम्राज्यवाद तो खत्म हो रहा है लेकिन एशिया के अनेक देशों में साम्यवाद के प्रति आकषर्ण बढ रहा है।

पश्चिम में साम्यवाद को राष्ट्रवाद का विरोधी माना जाता है क्योकि यह सम्पूर्ण विश्व के श्रमिको का क्रान्ति के लिये आवाहन करता है तथा राष्ट्रीय राज्य की समाप्ती का पा़ पाती है लेकिन एशिया में साम्यावाद एक दूसरे रूप में प्रस्तुत किया गया है। रूस के साम्यवादी नेता प्रारम्भ से ही इस महाद्वीप के निवासियों की राननीतिक स्वतत्रता आर्थिक और सामाजिक न्याय का समर्थन तथा साम्राज्यवाद का विशेष करते रहे है। एशिया के निवासी जो जातिगत भेदभाव मिटाकर समाज में एकता लाना तथा

अपने रहन सहन के स्तर को उठाना चाहते है। स्वभाविक रूप से उनकी ओर आकर्षित होते हैं रूस के अलावा सामाज्यवाद का दूसरा गढ चान भी एशिया में स्थित है। 1962 के अन्त तक इस विशाल महाद्वीप में साम्यवाद का विस्तार होता रहा। रूस और चीन में साम्यवादी सरकारे बन चुकी थी। इसके अतिरिक्त उत्तरी कोरिया और उत्तरी वियतनाम में भी साम्यावादी शासन स्थापित हुआ। परन्तु 1962 में चीन द्वारा भारत पर किया गया सैनिक आक्रमर्ण एशियाई देशों की एकता के बाद एक नये दौर में प्रवेश कर गइ। एशिया की नवोदित राष्ट्र चीन की चालाकी को समझने लगे। चीन की विस्तारवादी नीतियों ने एशियाई एकता के लिये एक नया संकट पैदा कर दिया। और एशियाई देशों में साम्यावाद के प्रति आकर्षण कम होने लगा।

एशिया के अधिकांश लोग साम्यवाद और अमरीकी पूॅजीवाद दोनों को अस्वीकार करते है। वे मानते है कि उनके प्रदेश तीसरी शक्ति हो सकते है। गुटो से अलग रहने या गुट निरपेक्षता की नीति एशिया के नवजागरण की प्रमुख विशेषता है।

बोध प्रश्न –2

1. तुर्की में राष्ट्रवादिता के प्रेणता थे।

   (1) सुकर्ण (2) मुस्तफा कमाल पाशा

   (3) सनयात सेन (4) औंगसांग

2. चीन ने भारत पर आक्रमण किया

   (1) 1960 (2) 1961

   (3) 1962 (4) 1964

3. एशियाई राष्ट्रवाद की प्रमुख विशेषतायें बतलायें।

4. एशिया में साम्यावाद के फलने फूलने के क्या कारण थे।

5.7 प्रथम विश्व युद्व के बाद एशिया के प्रमुख देश

महायुद्व से पूर्व जापान को छोउकर एशिया के अधिकांश देश साम्राज्यवादी लिप्सा, दमन और शोषण के शिकार थे जिन दिनो यूरोपीय शक्तियॉ अजेय समझी जाती थी। उन दिनो छोअे से जापान ने दैत्याकार रूस की पराजित कर और एशिया एशियावासियो का है का नारा लगाकर गोरे साम्राज्यवादियों का दिल दहला दिया। इसी प्रकार महाशक्ति के रूप में साम्यावादी चीन का उदय पूॅजीवादी गुट के प्रभुत्व पर एक प्राणघातक प्रहार है जिससे बचने का साधन टूटने में आज पश्चिम की समस्त सम्पदा व सामर्थ्य लगी हुई है।

5.7.1 चीन

सदियों तक अफीम की पिनक में ऊॅद्यने वाला चीन इस युग में जागा है। इसका क्षेत्रफल भारत के क्षेत्रफल से लगभग तिगुना है और इसकी जनसंख्या विश्व में सार्वाधिक है। साम्यवादी नेतृत्व में एकीकृत राष्ट्रीय शक्तियों के रूप में चीन का उदय इस शताब्दी को सर्वाधिक महत्वपूर्ण धाना है। इस उदय के पीछे एक पीढी के सशस्त्र संघर्ष की कहानी है। 268 वर्ष पुरानें मंचू शासन की समाप्ति पर वहॉ

1912 में गणतन्त्र की स्थापना हुई थी। नितु सैनिक नेताओं के मतभेद के कारण पेंकिग और कैन्टन दो पृथक शासन क्षेत्रों में विभाजित हो गये। प्रथम महायुद्व के पश्चात पेकिंग में तू चून की सैनिक सरकार और कैन्टन में सनपात सेन के नेतृत्व में गणतन्त्र की स्थापना हुई। सनपात सेन क्यूमिनतांग दल के संस्थापक थे जिनके घोषणा पत्र में उन्होने तीन शब्दों सान (राष्ट्रवाद) मिन (लोकतंत्र) चुई (जनता को उचित रूप में जीविका के साधनों को उपलब्ध कराना) पर बल दिया था। ये तीन शब्द चीनी राष्ट्रवादियों के लिए बाईबिल बन गये और वे उनसे प्रेरणा लेते रहे। सनपात सेन की मृत्यु 12 मार्च 1925 के बाद दल का नेतृत्व व्यांग काई शेक के हाथों में आया जिनके भ्रष्ट शासन के युग में। सनपात सेन की नितियों की हत्या हो गयी। शुरू में त्यांग और चीनी साम्यवादी दल के नेता माओ में गहरी भिगता थी। लेकिन 1927 में जब क्यूमिनतांग दल के सदस्यो ने साम्यवादियों को सभी दमहत्व पूर्ण सरकारी पदो से हटाकर उनका दमन करने की नीति अपनाई तो देश में गृह युद्व छिड गया। साम्यवादी नेता देहातो में चले गये जहॉ से उन्होने अपने आन्दोलन का संचालन किया। 1931 में उन्होने क्यांग सी व उसके आस पास के

प्रदेशों की जीतकर एक साम्यवादी गणराज्य बनाया। 1932 तक इ5 करोड जनता द्वारा बसा हुआ चीन का छठा अंश उसके नियंत्रण में आ गया। त्यांग काई शेक की सरकार उनका दमन करने में सफल न हो सकी। द्वितीय युद्व के दौरान जापानी आक्रमण का विरोध करने के लिये दोनेा साम्यवाद और क्यूमिनतांग के सदस्य मिलकर एक हो गये, लेकिन युद्व समाप्त होते ही उनकी पुरानी शत्रुता उभर आई। 1945 में द्वितीय विश्व युद्व की समाप्ति पर संयुक्त राज्य अमेरिका ने दोनो पक्षो पर समझौता कराने का निष्फल प्रयास किया अमरीका की सहानुभूति त्यांगकाई शेक के साथ थी। उसकी मदद के बलबूते पर शुरू में क्यूमिगतांग का पडला भारी रहा लेकिन जापान द्वारा मंचुरिया खाली करते समय छोडी गई रण सामग्री स्तालिन से प्राप्त हो जाने पर साम्यवादियों ने त्यांग की भ्रष्ट सरकार और सेना को मार भगाया। त्यांग और उसके समर्थक जान बचाकर ताइवान भागे। उधर 1 अक्टुबर 1949 को साम्यवादियों ने पेकिंग में चीनी जनता के गणराज्य पीपुल्स रिपब्लिक आफ चायना की स्थापना की विधिवत घोषणा कीं।

5.7.2 जापान

जापान चार बडे और तीन हजार छोअे वस्तुओं से मिलकर बना एक देश है। जो साक्षरता और विद्युत आपूर्ति की दशा में विश्व में सबसे आगे है। वहॉ 90 प्रतिशत लोग शिक्षित है। उसकी अर्थ व्यवस्था दनिया के किसी भी देश की तुलना में अधिक गतिशील है। उसके कारखानों द्वारा निर्मितमाल संसार के प्रत्येक कोने में जाता है।

1905 में रूस की पराजित करके जापान ने दक्षिणी सखालिन पोर्ट आर्थर अधिकार में ले लिया। मई 1915 में उसने चीन को युद्ध की धमकी देकर उससे दो संन्धियों पर हस्ताक्षर करा लिये। इसमें उसे दक्षिणी मंचूरिया तथा आंतरिक मंगोलिया में रेलमार्ग बनाने, दक्षिणी मंचूरिया की तथा किरन चांगचुन रेलों का 99 वर्ष का पटटा देने कोयले और लोहें की खानों के विकास व अन्य अनेक प्रकार की अर्थिक सुविधायें प्रदान की गई थी।

25 जुलाई 1927 को जापानी प्रधानमंत्री तनाका ने सम्राट हिरोहितों के सम्मुख जापान के साम्राज्य विस्तार का मूल आधार बनी।

सितम्बर 1931 में जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में लिया और वहॉ कठपुतिली सरकार की स्थापना की मंचूरिया के प्रश्न पर उसने मार्च 1933 में राष्ट्र संघ की सदस्यता त्याग दी। दिसम्बर 1937 तक जापान लगभग 20 करोड चीनी जनता पर अपना अधिकार जमा चुमा था।

द्वितीय महायुद्ध में जापान इटली और जर्मनी के साथ मिलकर मित्र राष्ट्रो के विरूद्ध लडा। युद्ध के प्रारम्भ में जापान को अप्रत्याशित सफलताएॅ मिली और बर्मा, मलाया इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स, सिंगापुर, हॉगकोम, न्यूगिनी आदि देशो पर उसका अधिकार हो गया। 1943 मे मुसोविनी के पतन के बाद जापान रोम–बर्लिन ध्रुरी कमजोर होती गई। 7 मई 9145 को जर्मनी के आत्मसमर्पण के बाद केवल जापान ही मित्रराष्ट्रो से लोहा ले रहा था। लेकिन अगस्त 1945 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने जापान पर अणंबम का प्रयोग करके सम्राट हिरोहितो का 14 अगस्त 1945 को आत्मसमर्पण के लिए विवश कर दिया।

1945 से 1952 तक जापान मित्रराष्ट्रो के अधीन रहा। 8 सितम्वर 1951 को 48 मित्रराष्ट्रो के साथ जापान ने सैन फ्रासिस्को में एक सैनिक संन्धि पर हस्ताक्षर करके संयुक्त राज्य अमेरिका का मित्र और संरक्षित राज्य बनने की शर्ते

मानकर अपनी राज्य सत्ता पुनः प्राप्त कर ली। अमरीका ने जापान की अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाने में उल्लेखनीय सहायता प्रदान की लेकिन जैसे जैसे शक्त और स्वबलम्बी होता गया वैसे वैसे जापान अमरीका पारस्परिक सुरक्षा संधि का विरोध बढता गया। साम्यवादी ने इस सन्धि की आड लेकर जापानी जलन्ता को अमरीका विरोधी बनाने में कोई कसर नही छोडी। अन्त में दोनो सरकारो में सन्धि की शर्तो पर पुनर्विचार करने का निश्चय किया। 19 माह के विचार विमर्श के उपरान्त 19 जनवरी 1660 को दोनों देशो के मध्य एक दसवर्षीय प्रतिरक्षा समझौता उम्पन्न हुआ। इसके अर्न्तगत जापान की सुरक्षा बनाये रखने के लिये अमरीका को जापान के सैनिक अडडो पर कब्जा बनाये रखने का अधिार मिल गया, लेकिन उन अडडों पर जापान की प्रभुसत्ता को मान्यता प्रदान की गई और जापान को सम्प्रभुत्ता सम्पन्न शष्ट्र का दर्जा प्रदान किया गया।

5.7.3 उत्तर व दक्षिण कोरिया

कोरिया लगभग 5 शताबदियों तक चीन के अधिकार में रहा।1910 में जापान में उसे जीत कर अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। काहिरा सम्मेलन 1943 में महाशक्तियों ने कोरिया को स्वतन्त्रता प्रदान करने का निश्चय किया। सामरिक दृष्टि से कोरिया, रूस, चीन, जापान, तीनों के लिये महत्वपूर्ण है। क्योकि खाघान्न और खनिज पदार्थो की दृष्टि से यह सम्पन्न है। और इसके किसी भी बन्दरगाह पर शाीत ऋतु में बर्फ नही जमती है। 8 अगस्त 1945 को रूस द्वारा जापान के विरूद्व युद्ध की घोषणा करने के उपरान्त सोवियत सेनायें कोरिया में घुस आइ। युद्ध की समाप्ति के बाद कोरिया पर विभाजन स्वीकार किया गया। उत्तर कोरिया में साम्यवादी शासन है और दक्षिण कोरिया लोकतंत्रवाद सैनिक सत्ता ब संयुक्त राज्य अमरीका को कृपा इन तीनो तत्वो के मध्य कार्य कर रहा है। अतः इन दोनो के मध्य एकीकरण की सम्भावना समाप्त होती जा रही है।

5.7.4 भारत

प्रथम विश्व युद्व से लगभग 300 वर्ष पहले से भारत ब्रिटिसों के अधीन था। हालांकि भारत में स्वतंत्रता प्रथम संग्राम 1857 में लडा जा चुका था।फिर

भी प्रथम विश्व युद्व ने भारत में भी अपनी आजादी के प्रति एक नई चेतना जगा दी। रूस पर जापान के विजय 1905 और रूसी क्रांति 1917 ने भारतीय जनमानस को भी बहुत प्रभावित किया और वो भी अपनी मातृभूमि को अंग्रेजों के साम्राज्यवाद से मुक्त करवाने में जी जान से जुट गये। खिलाफत आन्दोलन असहयोग आन्दोलन व भारत छोडों आन्दोलन जैसे कई आन्दोलनों ने खुले आम अंग्रेजों का विरोध करना शुरू कर दिया।रूस के साम्यवाद ने भारतीय जनमानस के मन में भी यह आग जगाई कि अपना शासन आने पर यहॉ पर भी सबको दो वक्त की रोटी आसानी से मिलने लगेगी।कृषकों और मजदूरों को सम्मान से जीने की हक मिलेगा और देश की अर्थव्यवस्था सुधर जायेगी। गांधी,नेहरू जैसे योग्य नेताओं के मार्गदर्शन में 15 अगस्त1947 को भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की। लेकिन उसके बाद बजाय अमेरिका या रूस के गुटों से जुडने के भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी। आज भारत विश्व का सबसे बडा लोकतंत्र है और सम्पूर्ण विश्व में सम्मानित है।

बोध प्रश्न–3

(1) चीनी राष्ट्रवादी सनयात सेन की मृत्यु हुई।

(अ) 1920 (ब) 1922

(स) 1925 (स) 1927

(2) तनाका मेमोरियल योजना लागू हुई।

(अ) 1925 (ब) 1927

(स) 1928 (द) 1930

(3) जापानी सम्राट हिरोहितों ने अमेरिका के समक्ष आत्मसमर्पण किया।

(अ) 6 अगस्त 1945 (ब) 9 अगस्त 1945

(स) 12अगस्त 1945 (द) 14अगस्त1945

(4) कोरिया स्वतंत्र हुआ।

(अ) 1940 (ब) 1943

(स) 1945 (द) 1947

(5) सनपात सेन के विषय में आप क्या जानते है।

(6) प्रथम विश्व युद्व के बाद जापान की प्रगति के बारे में बतायें।

5.8 सारांश

विश्व का सबसे महाद्वीप एशिया शुरू से ही विभिन्न धर्म और संस्कृतियों वाला देश रहा है। यहॉ की राजनीतिक व्यवस्थायें भी एक दूसरें से काफी अलग है। लेकिन फिर भी आर्थिक पिछडापन,जनसंख्या की अधिकता और रूढिवादिता ऐसी समस्यायें है जो संपूर्ण एशिया में विद्यमान है। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप यूरोप प्रगति करता चला गया। जबकि एशिया काफी पिछड गया। सस्ते कच्चे माल और नये बाजारों की खोज में यूरोप के देशों ने अपना विस्तार करना शुरू किया इसके लिए एशिया उन्हें उपयुक्त स्थान लगा और शीघ्र ही एशिया के कई देश यूरोप के उपनिवेश बन गये। भारत जैसा बडा देश भी सदियों,दासता की बेडियों में जकडा रहा। लेकिन पश्चिमी ज्ञान व विज्ञान,

संचार एवं यातायात के साधनों के विस्तार ने एशिया वासियों के मन में भी राष्ट्रवादिता की भावनायें जगा दी। प्रथम विश्व युद्व के बाद बदली हुयी राजनीतिक परिस्थितियॉ और एशियाई देशों के दबाव के कारण पश्चिमी देश एशिया में अपने उपनिवेश समाप्त करने को मजबूर हो गये और धीरे धीरे सम्पूर्ण एशिया मुक्त हो गया। आज विश्व में एशिया का बहुत महत्व है। चीन और भारत जैसे बडे देश विश्व में एशिया की अगुवाई कर रहे है। आर्थिक,सामाजिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में एशिया के देशों ने बहुत उन्नति की है। और इसका साराश्रेय यहॉ की संघर्षशील जनता को है।

5.9 शब्दावली

स्वशासन – स्वयं का शासन

कम्यूनिस्ट – साम्यवादी

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

(1) (अ) × (ब) × (स) √ (द) ×

(2) (अ) × (ब) √ (स) × (द) ×

(3) देखें भाग 5.3

(4) देखें भाग 5.4

बोध प्रश्न – 2

(1) (अ) × (ब) √ (स) × (द) ×

(2) (अ) × (ब) × (स) √ (द) ×

(3) देखें भाग 5.5

(4) देखें भाग 5.6

बोध प्रश्न – 3

(1) (अ) × (ब) × (स) √ (द) ×

(2) (अ) × (ब) √ (स) × (द) ×

(3) (अ) × (ब) × (स) × (द) √

(4) (अ) × (ब) √ (स) × (द) ×

(5) देखें भाग 5.7.1

(6) देखें भाग 5.7.2

NOTES

NOTES